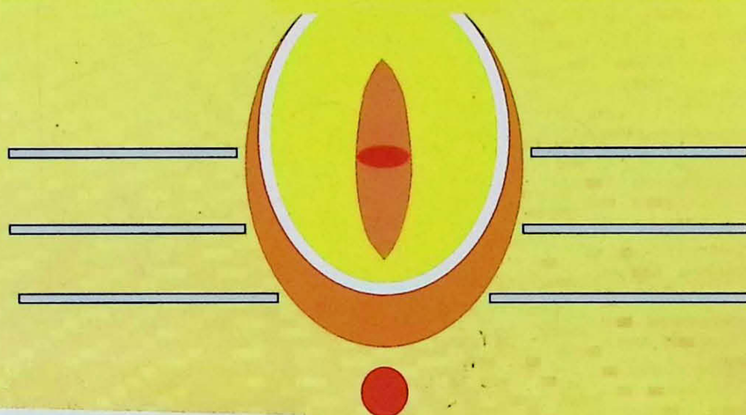
तिलक विमर्श



लेखक

डॉ० मुरलीधर पाण्डेय

शैलेश प्रकाशन

तिलक विमर्श

लेखक
डॉ० मुरलीधर पाण्डेय
वाचस्पति (डी० लिट्)
राष्ट्रपति सम्मानित

सम्पादिका
डॉ० शैलकुमारी मिश्र
रीडर
गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
इलाहाबाद

२००० (संवत् २०

शैलेश प्रकाशन

प्रकाशक
शैलेश प्रकाशन

प्रथम संस्करण
सन् २०००

मूल्य—७५ रु०

प्राप्तिस्थान
डॉ० मुरलीधर पाण्डेय
बी० २/४७ तुलसीघाट मार्ग,
भदैनी, वाराणसी - २२१ ००१

७०१/२/६७ डी रामानन्द नगर
भरद्वाज पुरम्, इलाहाबाद - २११ ००६

कम्प्यूटर डिजाइनिंग :
स्टूडियो ट्वैन्टी नाइन, इलाहाबाद

मुद्रक :
नागरी प्रेस, इलाहाबाद

विषय सूची

स्वकीयम्

भारत विविधताओं वाला देश माना जाता है। वेश-भूषा, भाषा, सांस्कृतिक परम्परा आदि प्रत्येक कार्यों में यहाँ वैविध्य परिलक्षित होता है। रुचि वैचित्र्य के कारण लक्ष्य एक होते हुए भी सम्प्रदाय भेद से भक्तजनों द्वारा ललाट पर धारण किए जाने वाले तिलकाकृतियों में भी यहाँ बड़ी विविधता है। पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय के लोग अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार परमात्मपूजन के पूर्व विभिन्न आकृतियों में एवं विभिन्न उपादान द्रव्यों से तिलक धारण करते हैं। वस्तुतः भारत में तिलक की बड़ी महिमा है तथा यह हमारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में इतना रच-बस गया है कि इसके अभाव में कोई भी धार्मिक या मांगलिक कार्य सम्पन्न ही नहीं होता। तिलक की इन्हीं विशेषताओं एवं विविधताओं पर पर्याप्त प्रकाश डालता है प्रस्तुत पुस्तक 'तिलक विमर्श'।

इस पुस्तक में भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों में प्रचलित प्रायः 100 तिलकाकृतियों का सचित्र संकलन किया गया है। प्रत्येक तिलक का ऐतिहासिक आख्यान तथा उसमें प्रयुक्त उपादान द्रव्यों का भी सम्यक् विवेचन किया गया है। यह एक अभूतपूर्व कार्य है। यद्यपि इस पुस्तक के पूर्व भी एतद् विषयक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं किन्तु वे या तो अति संक्षिप्त हैं अथवा किसी सम्प्रदाय विशेष से संबद्ध। विस्तृत जानकारी के साथ समस्त तिलकों के एकत्र संकलन का यह प्रथम प्रयास है। यह अत्यन्त श्रम एवं समय साध्य कार्य था। मठों तथा आश्रमों में जाकर तत्तद् सम्प्रदायों के आचार्यों से सम्पर्क कर सभी तथ्यों को एकत्रित करना सुकर

नहीं था। इस विषय में अभिरूचि रखने वाले विद्वज्ज़न इस कार्य के श्रम एवं महत्त्व का सही आकल कर सकेगें।

आज एक लम्बे अन्तराल के बाद 'तिलक विमर्श' को पुस्तकाकार में देखकर असीम प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ किन्तु पुस्तक के प्रकाशित हो जाने पर एक ओर जहाँ हर्ष है वहीं प्रकाशन में हु अत्यधिक विलम्ब के कारण लज्जा एवं खेद की अनुभूति भी। लगभग चार वर्ष पूर्व (1996) में पूज्य पिताजी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य मुझे सौंपा था। वे स्वयं अस्वस्थता, वार्धक्य एवं प्रेस की कठिनाइयों के कारण इसके प्रति उदासीन से थे। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर प्रयाग में ही एक प्रतिष्ठित मुद्रणालय में मुद्रणहेतु दिया परन्तु निरन्तर प्रयास के पश्चात् भी मुद्रण कार्य में आशाजनक प्रगति नहीं हुई। लगभग चार वर्षों का समय व्यतीत हो रहा था। पिताजी का दिनानुदिन गिरता स्वास्थ्य एवं प्रेस की ओर से किया जा रहा शैथिल्य मुझे उद्विग्न कर रहा था। अंततः मुझे इस कार्य को एक अन्य प्रेस में देना पड़ा और एक बार पुनः प्रेस की सारी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा। पुस्तक के प्रकाशन में विलम्ब का एक और कारण था। इस पुस्तक की छपाई अन्य पुस्तकों की अपेक्षा थोड़ी भिन्न थी। 100 तिलकाकृतियों को रेखाङ्कित करने तथा प्रयोजनानुसार उनमें रंग भरने आदि में भी कुछ अधिक समय लगना स्वाभाविक था। अस्तु।

पुस्तक के प्रकाशन का सर्वाधिक श्रेय मैं श्री चन्द्रमणि मिश्र (पुस्तकालयाध्यक्ष, हाईकोर्ट) को देती हूँ। इनके सहयोग के बिना मैं सर्वथा अक्षम थी। मैं श्री अशोक डावरा जी मार्डन ला हाउस, की आभारी हूँ, जिन्होंने इस कार्य को सम्पन्न करने में पूर्ण मनोयोग से सहयोग किया है। श्री अशोक जी नगर के व्यस्ततम लोगों में से एक हैं।

फिर भी अपना मूल्यवान् समय देकर अल्प समय में सोत्साह एवं रूचिपूर्वक इस कार्य को सम्पन्न कर श्लाघनीय बनाया है। कम्प्यूटर डिजाइनर श्री प्रदीप श्रीवास्तव एवं नागरी प्रेस के प्रबन्धक श्री पाण्डेय जी को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने इस अर्थ प्रधान युग में यथासंभव उदारता बरत कर इस पुस्तक को सुन्दर एवं आकर्षक बनाकर पूर्णता प्रदान की।

अन्त में पुस्तक के प्रकाशन में हुए विलम्ब तथा मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियों के लिए मैं विनम्र निवेदन करना चाहती हूँ—'आविलन्तु ममैवास्ति तदर्थं प्रार्थयेक्षमाम्'।

—शैलकुमारी मिश्र

पुरोवाक्

कर्मकाण्ड करते समय प्रारम्भ में आत्मपूजन या जीवात्मपूजन की विधि है। इसका निर्वाह अपने देश के पूर्वाञ्चल में नहीं हो रहा है किन्तु पश्चिमांचल में अभी भी कर्मकाण्ड शुरू करते समय जीवात्मपूजन की प्रक्रिया चल रही है। उसमें यजमान या कर्मकर्ता अपने सिर पर चन्दन-पुष्प आदि रखकर अपना अर्थात् 'स्व' का पूजन करता है। इसमें तिलक लगाना प्रधान कर्तव्य है। देश के पश्चिमाञ्चल में रहते समय कर्मकाण्ड करने के अवसर पर आचार्य ने ध्यान पूर्वक मुझसे (अपने को) तिलक लगवाया, तब मेरी जिज्ञासा उपजी कि आखिर तिलक का इतना महत्त्व क्यों हैं? तिलक क्या है तथा तिलक के कितने भेद हैं और क्यों हैं? तिलक करने के स्थान तथा तिलक के उपादान द्रव्य कौन-कौन से हैं? इसके लिए धर्मशास्त्र के ग्रन्थों, पुराणों एवं आधुनिक शोध ग्रन्थों का अध्ययन करने लगा। भगवत्कृपा से सामग्री भी मिलती गयी। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड और पाताल खण्ड, स्कन्द पुराण के वैष्णव और महेश्वरखण्ड, शिवपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मपुराण, देवीभागवत—उत्तराद्र्ध, लिङ्गपुराण, ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यस्मृति, ब्रह्मसूत्रभामती आदि ग्रन्थों में तिलक का माहात्म्य, स्वरूप (आकार) तथा उपादान द्रव्यों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इन पुराणों और स्मृति ग्रन्थों के अतिरिक्त काव्य ग्रन्थों में भी तिलक का महत्त्व वर्णित है। बाणभट्ट अपने हर्ष चरित में सावित्री माता के वर्णन में भस्माङ्कितत्रिपुण्ड्र के लिये कहते हैं—"**तपोबलनिर्जितत्रिभुवनपताकाभिरिव । तिसृभिर्भस्मपुण्ड्रकराजिभिर्विराजितललाटा०**"।[१] पुनः यहीं पर वेदों के लिए कहा है—**अग्निहोत्रपवित्रभस्मस्मेरललाटैः .... वेदैः सह**"।[२] यहीं पर पुनः दधीचि के संदेश को सरस्वती तथा सावित्री से पहुँचाने वाली मालती के

---

१. हर्ष० उ० १, पृ० ३

२. हर्ष० उ० १, पृ० ४

लिए कहते हैं—"**तमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलकबिन्दुना मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती**"[१] आधुनिक विद्वानों का भी इस पर ध्यान गया है पर बहुत कम। **डा० पं० वंशीधर त्रिपाठी** जी ने अपने ग्रन्थ 'साधुज ऑफ इण्डिया', **डा० श्री भगवती प्रसाद सिंह** ने अपने ग्रन्थ 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय', **श्री पी० थामस्** (P. Thamas) ने अपने 'इन्क्रेडिबुल इण्डिया' (Incredible India) ग्रन्थ में तिलक की चर्चा की है, पर इन तीनों विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों के मुख्य उद्देश्यों के अनुसार आंशिक रूप में अथवा गौण रूप से तिलकरूप पर दृष्टि डाली है। जैसे **श्री पी० थामस् महोदय** ने अपने ग्रन्थ में ७४ तिलकों का स्वरूप दिया है। इससे अधिक का प्रयोजन भी उनके लिए नहीं था। पर कौन तिलक किसका है? किस उद्देश्य से तिलक करना चाहिए? किन उपादान द्रव्यों से कौन सा तिलक बनता है? तथा किस अंग में किस निमित्त तिलक लगाया जाता है? इन विषयों पर उन्होंने विचार नहीं किया है। इसी प्रकार **डा० श्री त्रिपाठी** जी ने भारतीय साधुओं का परिचय लिखते समय प्रकरणानुसार जहाँ शैव साधुओं का वर्णन चला, वहाँ वैष्णव या शाक्त आदि के तिलकों के कुछ स्वरूप अंकित किये हैं, कुछ सूचित किये और कुछ विवृत भी किये हैं। तिलकों के चित्र तो शैवों के २४, शाक्तों के ३ और वैष्णवों के ३२ अंकित हैं पर इन सभी में आज के अधिक प्रचलित श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के चार और रामानुज, मध्व, निम्बार्क एवं वल्लभ के ७ तिलकों की रचना पर विशेष विचार किया गया है। इनमें भी ऐसा प्रतीत होता है कि **श्री पी० थामस् महोदय** के '**तिलक चित्रावलि**' से संभवत: वे संगृहीत किये गये हैं। **डा० श्री भगवती प्रसाद सिंह** जी ने तो अपने ग्रन्थ के उद्देश्यानुसार रामभक्त रसिकों के केवल १२ तिलकों के स्वरूप एवं इनके प्रवर्तकों की नामावलि प्रस्तुत की है।

इन नवीन शोध ग्रन्थों में तिलक के कुछ स्वरूप तो मिलते हैं, पर ये

---

१. हर्ष० उ० १, पृ० ५

तिलक क्यों किये जाते हैं? इनमें अवान्तर भेद क्यों हुए? इनके उपादान द्रव्य क्या-क्या हैं? और क्यों हैं? इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान नहीं मिलता। पूर्वोक्त पुराणों में एवं स्मृतियों में तिलकमाहात्म्य, तिलकस्वरूप, उपादान द्रव्य तथा तिलक लगाने के प्रसंग में या किसी कल्प विशेष के प्रसंग में तिलक पर कुछ-कुछ लिख दिया गया है। अत: इन सब को एकत्र करने के उद्देश्य से तथा आधुनिक विचारधारा के विद्वानों के द्वारा उत्पन्न की गयी जिज्ञासाओं पर विचार करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ के लेखन में प्रवृत्ति हुई।

पुराणों तथा स्मृतियों में तिलक के इतने भेद नहीं प्राप्त होते हैं। वहाँ केवल त्रिपुण्ड्र, वैष्णवऊर्ध्वपुण्ड्र शाक्तबिन्दु तिलक, इनके माहात्म्य, तिलक लगाने के स्थान (अंग) विशेष तथा उपादान द्रव्यों का ही वर्णन है। अब एक ही शैव, वैष्णव या शाक्त तिलक में थोड़े रूप भेद एवं उपादान भेद, देकर जो इन सब के ७४ भेद प्राप्त हो रहे हैं, ये भेद क्यों हुए? किसलिए हुए? इनके प्रवर्तक कौन हैं? और इन सभी का प्रयोग आजकल किन-किन स्थानों पर एवं प्रदेशों में हो रहा है? इत्यादि इन सभी ज्ञान की सामग्री को इस ग्रन्थ में प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास किया गया है। इसके लिए उन-उन सम्प्रदायों के महात्माओं, साधुओं एवं विद्वानों से सम्पर्क बनाकर विचार-विमर्श कर तथा उनके उपदेश के अनुसार एवं तत्तत् सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार, कहीं-कहीं देश, काल एवं परिस्थति के अनुसार तथा कहीं कल्पना के आधार पर सामग्री प्रस्तुत की गयी है। जो तथ्य, शास्त्रों एवं साधु-माहात्माओं से न प्राप्त हो सके उनके लिए कल्पना का सहारा लेना पड़ा है। इसमें एक बहुत बड़ी कठिनाई यह भी रही है कि कुछ विद्वान् एवं साधु महात्माजन इन सब को बताना नहीं चाहते, गोपनीय रखते हैं। कुछ इस पचड़े में पड़ना नहीं चाहते और कुछ ये सब जानना भी नहीं चाहते और जानते भी नहीं। इसलिए अधिक संभव है कि बहुत सी भ्रान्तियाँ एवं त्रुटियाँ इसमें आ गयी हों। अत: सभी संत महात्मा एवं विद्वानों से नम्र निवेदन है

कि क्षमा करेंगे, सुधारेंगे और गलती बताकर अग्रिम प्रयास के लिए प्रोत्साहित करने का अनुग्रह करेंगे।

मैं इन सभी संतों, विद्वानों एवं **डा० त्रिपाठी** जी, **डा० सिंह** जी, तथा **श्री पी० थामस्** महोदय के प्रति अपना आभार एवं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी कृपा से यह प्रयास इस रूप में परिणत होकर आ सका। परम उदार **श्री रामाश्रय त्रिपाठी** (आर० टी० ओ०) उपाध्यक्ष श्री भुवनेश्वर संस्थान, बिहसड़ा, मिरजापुर ने इनके प्रकाशन के लिए बार-बार प्रोत्साहित किया और आंशिक आर्थिक सहायता भी प्रदान की है। एतदर्थ मैं उनका आभारी और कृतज्ञ हूँ। भगवान् विश्वनाथ उनको दीर्घायुष्य प्रदान करें तथा इस प्रकार की सद्वृत्ति एवं सद्भक्ति को और भी सुदृढ़ तथा पल्लवित करें।

इस पुस्तक को सम्पादित कर प्रकाश में लाने का श्रेय मेरी सौभाग्यवती तनया **डा० (श्रीमती) शैलकुमारी मिश्र,** रीडर गंगानाथ झा के० सं० विद्यापीठ, प्रयाग को है। इनकी इस सारस्वत सेवा से शारदाम्बा विद्या, बुद्धि, प्रतिभा तथा वैभव प्रदान करें यह प्रार्थना है। साथ ही इस ग्रन्थ के समस्त तिलकों के चित्रों को बनाने में पुत्रकल्प **श्री विनय कुमार मिश्र** एवं दौहित्र **श्री व्रजेश कुमार मिश्र** ने रुचिपूर्वक सहयोग किया है। अतएव उन्हें अनेकशः शुभाशीर्वाद से अलंकृत करता हूँ। परमात्मा इनका अभ्युदय करें। इस ग्रन्थ के प्रकाशक मेरे नप्ता **श्री शैलेश कुमार मिश्र** दीर्घायुष्य तथा विद्यापारंगत हों, यह मेरा शुभाशीर्वाद है।

सम्वत् २०५७

विदुषाम् आश्रवः

मुरलीधर पाण्डेय

उपोद्घात

सनातन वैदिक धार्मिक परम्परा में कर्मकाण्ड, भक्तिकाण्ड (उपासनाकाण्ड) और ज्ञानकाण्ड तीनों में प्रत्येक शुभ एवं अशुभ कृत्य में तिलक बनाना अनिवार्य माना गया है। **तिलक** का शाब्दिक अर्थ होता है—**'तिल एव तिलकः'** स्वार्थ में कन् प्रत्यय करने पर तिल ही तिलक कहलाता है। तिल एक छोटा सा काला बीज होता है, उसी के आकार का काला धब्बा शरीर के किसी अंग पर पड़ जाता है तो उसे तिलक या तिल कहते हैं। यह चिह्न विशेष तिल किसी विशेष अंग पर पड़ जाता है तो उस अंग विशेष का सौन्दर्य बढ़ाता ही है साथ-साथ किसी शुभ फल का परिचायक भी होता है। सामुद्रिकशास्त्र में अंगविशेष के तिल के आधार पर अनेक शुभाशुभ फलों का निर्देश किया गया है। भारत के अनेक प्रान्तों में कुछ नारियाँ जिनके अंगों पर स्वाभाविक तिल नहीं होता है, वे गोदना गोदवा कर कृत्रिम तिल बनवाती हैं। इस कृत्रिम तिलक से सामुद्रिक शास्त्र कथित शुभाशुभ फलों का परिचय तो नहीं प्राप्त होता किन्तु उससे अंग विशेष की शोभा बढ़ जाती है। वस्तुतः गोरे अंग पर काले तिल बड़े आकर्षक और मनोरम लगते हैं। विशेषतः ये तिलक चिबुक, गाल, या मस्तक पर गुदवाए जाते हैं।

इस स्वाभाविक एवं कृत्रिम तिलक के अतिरिक्त धार्मिक कृत्य वाला तिलक भी होता है, जो चन्दन, कस्तूरी, केसर, मृत्तिका आदि से निर्मित अनेक प्रकार के चिह्न विशेषों के लिए रूढ़ है। धार्मिक कृत्यों का यह अंग माना जाता है। जैसे किसी भी धार्मिक अनुष्ठान से पूर्व पाञ्चभौतिक शरीर को मृत्तिका या जलादि से शुद्ध करना, प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को शुद्ध करना तथा ध्यान व एकाग्रता के द्वारा चित्त को पवित्र करना आवश्यक है, उसी प्रकार इन तीनों से ऊपर जीव का शुद्धीकरण निमित्तक पूजन आवश्यक है। जीव तो शरीर में सर्वत्र व्याप्त है फिर भी शरीर के उत्तमाङ्ग शिरोभाग रूप ब्रह्माण्ड में जीवन के लिए विशेष

स्थान माना जाता है। तिलक का इतना महत्त्व है कि प्राचीन समय में एक स्वामी जी थे, जो धार्मिक क्रिया कलापों में तिलक को बड़ा ऊँचा स्थान देते थे साथ ही तिलक पर भी बड़ा ध्यान देते थे, जिससे उनका नाम तिलकस्वामी पड़ गया था। इनका स्मरण करना सर्व सिद्धिप्रदायक माना जाता है। ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य की व्याख्या 'भामती' के प्रारम्भ में **श्री वाचस्पति मिश्र** ने लिखा है—

मार्तण्डतिलकस्वामिमहागणपतीन् वयम्।

विश्ववन्द्यान् नमस्यामः सर्वसिद्धिविधायिनः ॥[१]

इसकी टीका 'वेदान्त कल्पतरु' में तिलकस्वामी का अर्थ किया गया है—"तिलकप्रियः स्वामी तिलकस्वामी"। आजकल भी रामानुज वैष्णव सम्प्रदाय में तिलक का बहुत महत्त्व है। इन महात्माओं की भाषा में स्नान बनाने के बाद स्वरूप बनाना आवश्यक है। स्वरूप बनाने से इनका तात्पर्य तिलक बनाने से है। सही ढंग से तिलक बनाने में कम से कम आधा घण्टा समय लगता है। यदि किसी महात्मा को अधिक शीघ्रता और समय की कमी है तो स्नान बनाकर ढंग से तिलक रच कर दो-चार बार हरिनाम ले लेते हैं और अपने पूजाक्रम को इतने से ही पूर्ण मानते हैं। स्वरूप बनाना अत्यावश्यक समझा जाता है। यदि मध्याह्न के बाद किसी कार्यक्रम में उपस्थित होना है तो ये महात्मा अन्य आराधनाक्रम को छोड़ कर तिलक द्वारा अपना स्वरूप बनाना नहीं भूलते। यह माना जाता है कि परमात्मपूजन का प्रधान अंग जीवात्मपूजन है और जीवात्मपूजन का प्रधान अंग तिलकधारण है।

तिलक धारण के स्थान एवं प्रकार—

द्वादशाङ्गे ललाटादौ तिलकं हरिमन्दिरम्।

स्नानान्ते वैष्णवः कुर्य्यात् प्रत्येकं कृष्णनामभिः ॥

---

१. भामती श्लो० ४

वामे वक्षसि नेत्रान्ते गण्डेंऽसे शंङ्खचिह्नितम्।
तथैव दक्षिणे कुर्याद्धरेश्चक्राङ्कितं मुने॥

ललाटे केशवं विद्यात् कण्ठे श्रीपुरुषोत्तमम्।
वामबाहौ वासुदेवं सव्ये दामोदरन्तथा॥

नाभौ नारायणञ्चैव माधवं हृदये तथा।
गोविन्दं दक्षिणे पार्श्वे वामे चैव त्रिविक्रमम्॥

विष्णुं सव्ये कर्णमूले दक्षिणे मधुसूदनम्।
शिरोमध्ये हृषीकेशं पद्मनाभं च पृष्ठतः॥

हरेर्द्वादशनामानि पठित्वा तिलकानि तु।
यः कुर्याद्वैष्णवो नित्यं स प्रेमभक्तिमाप्नुयात्॥

ये कण्ठलग्नतुलसीभवकाष्ठमाला-
ये द्वादशाङ्गहरिनामकृतोर्द्ध्वपुण्ड्राः।
ये कृष्णभक्तिसुदृढ़ा धृतशङ्खचक्रा-
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥

तिलकन्तूर्ध्वपुण्ड्राख्यं मध्यच्छिद्रं हि नारद!।
यदि कुर्याल्ललाटे तद्विज्ञेयं हरिमन्दिरम्॥

आनासामूलमाश्रित्य शिरोमध्यगतं मुने!।
हरिपादाकृतिं नासामूलमारभ्य यत्नतः॥

हरिमन्दिरवत् सर्वं तद्राधावल्लभीयकम्।
श्रीराधावल्लभीयं यत् तिलकं सुमनोहरम्॥

यौगलं तत्तुविज्ञेयं यदि मध्यसुरङ्गित्तम्।
यदूर्ध्वपुण्ड्रं तिलकं शोभनं तन्मनोहरम्॥

तन्मध्ये पीतरेखं च श्रीमद्रामानुजं विदुः।
श्रीरामोपासना यस्य तिलकं तूर्ध्वपुण्ड्रकम्॥

भ्रुवोर्मध्ये सबिन्दुः स्याद् यदि विप्र! मनोहरम्।
हरेः सर्वावताराणां मत्स्यादीनां विशेषतः॥
उपासकानां तिलकं केवलं हरिमन्दिरम्।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्य्यात् क्षत्रियाणां तथैव च।
वैश्यानां तु तथा विप्र! शूद्रादेर्मण्डलाकृतिः॥

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः।
तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः॥

दृष्ट्वा भाले द्विजातीनामच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रकम्।
कार्ष्णः कृष्णिात्रतिं कृत्वा वस्त्रेणाच्छादयेन्मुखम्॥
ललाटे दक्षिणे ब्रह्मा वसेद्वामे महेश्वरः।
मध्ये विष्णुर्वसेन्नित्यं तस्मान्मध्यं न लेपयेत्॥

वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घ ततं नतम्।
षष्ठलक्षणसंयुक्तं तिलकं यन्निरर्थकम्॥

खनित्रयष्टिकुकूनत्रिशूलमुकुराकृति-।
त्रिपुण्ड्रमर्धचन्द्रं च तिलकं यन्निरर्थकम्॥

प्रमाणं तूद्‌ध्वंपुण्ड्रस्य दीर्घं स्यात् कलिवर्धनम्।
आनासामूलमारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगतं यदि॥

शूद्रस्यैकाङ्गुलं प्रोक्तमायतं द्व्यङ्गुलं विशि।
क्षत्रिये त्र्यङ्गुलं तद्वत् ब्राह्मणे चतुरङ्गुलम्॥

नासिकायास्त्रिभागैको भागो मानेन यो भवेत्।
भ्रुवोर्मध्यादधः स्थानम् मूलमाहुर्मनीषिणः॥

ब्रह्मचारीगृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
कुर्यात् यदूर्ध्वपुण्ड्रं तद् वैष्णवो हरिमन्दिरम्॥

वैष्णवा विप्रा भूयाश्चेद् वैश्यशूद्रान्त्यजाश्रमाः।
यदूर्ध्वपुण्ड्रं बिभृयुस्तदेव हरिमन्दिरम्॥

नरो वाप्यथवा नारी यदि कृष्णपथं लभेत्।
यत्नतस्तुलसीमाला सन्धार्या हरिमन्दिरम्॥

मध्यच्छिद्रं तु न कुर्यात् यस्तिलके यदि वैष्णवः।
शवपदं तत् चितातुल्यं भवेद् नारद! नान्यथा॥

दण्डाकारं द्विरेखं यत् तिलकं मूलकोणकम्।
मध्यच्छिद्रन्तु तत् प्राहुरूर्ध्वपुण्ड्रं मनोहरम्॥

तिलक क

अधोमुखात्मकलिकाकारं तिलकमुत्तमम्।
मध्यच्छिद्रं युग्मरेखमूर्ध्वपुण्ड्रं प्रकीर्तितम्॥

तीर्थमृद् यज्ञकाष्ठं च बिल्वोमलयसंभवम्।
अश्वत्थतुलसीमूलमृत्तिकागोष्पदस्य च॥

जाह्नवीमृन् महानिम्बतुलसीकाष्ठमेव च।
कस्तूरीकुङ्कुमं फल्गु[१] सिन्दूरं रक्तचन्दनम्॥

गोरोचना गन्धकाष्ठं जलं चागुरुगोमयम्।
धात्रीमूलस्य मृद्गन्धो हरिद्रा गोगृहस्य च॥

स्नानान्ते सर्ववर्णानामाश्रमाणां तथैव च।
एतानि तिलकान्याहुः सन्ध्यादि सर्वकर्मसु॥

गंगामृद् तुलसीमूलमृत्तिकामलयोद्भवम्।
साधोश्चरणसंलग्नं रजोमृद्गोष्पदस्य च॥

अश्वत्थमूलमृद्गोपीचन्दनं तीर्थमृत्तिका।
गोरोचना च कस्तूरी हरिद्रागुरुचन्दनम्॥

वल्मीकमृत्तिकागन्धः पद्मकं हरिचन्दनम्।
गन्धकाष्ठं महानिम्बो यमुनातीरमृत्तिका॥

गुरुपादरजोवारिसुसाध्वङ्घ्रिरजो जले।
कृत्वा प्रतिदिनं स्नानमेतैर्गन्धमृदादिभिः॥

---

१. फल्गु — उदुम्बरकाष्ठ

चारु यत् तिलकं ग्राह्यं तन्नाम्ना वैष्णवैर्ध्रुवम्।
काम्यं नैमित्तिकं नित्यं यत्किञ्चित्कर्म नारद!।।

वर्णाश्रमाणां तन्नास्ति स्नानान्ते तिलकं विना।
कर्म वर्णाश्रमाणां स्याद् दैवं पैत्रं न तत्फलम्।।

स्नानं सन्ध्यां पञ्चयज्ञान् पैत्रं होमादिकर्म यः।
विना तिलकदर्भाभ्यां कुर्यात्तन्निष्फलं भवेत्।।[1]

वीक्ष्यादर्शे जले वापि यो विदध्यात् प्रयत्नतः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभागः स याति परमां गतिम्।।[2]

शिवागमे दीक्षितैस्तु धार्य्यं तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम्।
विष्णवागमे दीक्षितस्तु ऊर्ध्वपुण्ड्रं विधारयेत्।।[3]

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षस्थले माधवं तु गोविन्दं कण्ठकूबरे।।

विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ वामे च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके।।

श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च कट्यां दामोदरं न्यसेत्।।
तत्प्रक्षालनतोयं तु वासुदेवेति मूर्द्धनि।

1. प० पु० उत्तर खण्ड, अ० २२५
2. स्क० पु० वैष्णव खण्ड, (मार्ग० मा०) अ० ३, श्लोक १८
3. नागोजी भट्टधृतसूत्रसंहिता

ऊद्‌र्ध्वपुण्ड्रं ललाटे तु सर्वेषां प्रथमं स्मृतम्।

ललाटादि क्रमेणैव धारणं तु विधीयते ॥[१]

एवं न्यासं समाचर्य सम्प्रदायानुसारतः।

न्यसेत् किरीटमन्त्रं च मूर्ध्नि सर्वार्थसिद्धये॥

अथकिरीट मन्त्रः—

ॐ श्री किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलचक्रशंखगदापद्महस्तपीताम्बरधर-श्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्दीप्तिप्रकरायसहस्त्रा-दित्यतेजसे नमो नमः।[२]

इस प्रकार पद्मपुराण के पाताल खण्ड में, ब्रह्माण्डपुराण में, देवी भागवत में, बृहद्धारीतस्मृति में, तथा वैष्णवमताब्ज भास्कर आदि ग्रन्थों में तिलक के भेद, स्थान, आकार, उपादान द्रव्य तथा फल के विषय में बहुत विचार किया गया है।

शरीर में बारह स्थानों पर तिलक लगाना चाहिये—१. ललाट, २. दक्षिणबाहु, ३. वामबाहु, ४. नाभि, ५. कर्णमूल (दक्षिण), ६. कर्णमूल (वाम), ७. हृदय, ८. शिर मध्य, ९. कण्ठ, १०. दक्षिण पार्श्व, ११. वाम पार्श्व १२. पृष्ठ देश। इन स्थानों पर तिलक लगाने से इन-इन स्थानों के अधिष्ठातृ देवताओं का पूजन होता है। श्रोत्र, त्वग्, चक्षु, रसना और नासिका के देवता दिक्, वायु, सूर्य वरुण और अश्विनीकुमार हैं। वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ के देवता अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मृत्यु और प्रजापति हैं। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त के देवता चन्द्र, ब्रह्मा, शंकर तथा अच्युत हैं। वेदान्त परिभाषा के विषयप्रकरण में इस पर विचार किया गया है। इनमें एक-दो स्थानों के देवताओं का वायु में अन्तर्भाव करके उन स्थानों पर तिलक नहीं लगाये जाते।

---

१. प० पु० उत्तर ख० अ० २२५, श्लो० ४५-४८, ५४

२. (समस्त श्लोक वाचस्पत्यम् पृ० ३३०३-४ से उद्‌धृत)

श्री मध्वाचार्य के द्वैतवादी दार्शनिक सिद्धान्त को मानने वाले वैष्णव भक्तगण शरीर के विभिन्न द्वादश अंगों में विष्णु के द्वादश नामों के स्मरण के साथ तिलक धारण करते हैं।

आकार के अनेक भेद हैं। ये भेद दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार उपासना के भेद से होते हैं। श्रौतस्मार्तकर्म यज्ञ प्रधान है। यज्ञ में अग्नि प्रधान है। यज्ञावशिष्ट भस्म बड़ा पवित्र होता है। अध्वर एवं अध्वर्यु से सम्बद्ध यजुर्वेद के अंतिम चालीसवें अध्याय के अन्त में 'भस्मान्तं शरीरम्' (ई० उ० १७) कहकर शरीर का अन्तिम रूप भस्म निर्दिष्ट किया है। इसलिए महती पवित्रता एवं अन्तिम रूपता के ध्यान के लिए भस्म धारण किया जाता है।

औपनिषद दर्शन शाङ्करवेदान्त के अनुसार सर्वव्यापक तथा स्वरूप ब्रह्म एवं जीव को लक्ष्य करके तत्-तत् स्थान पर भस्म का अवलेपन करते हैं। आगम प्रधान औपनिषद दर्शन वैष्णववेदान्त के अनुसार ऊर्ध्वलोक, विष्णुलोक, साकेतलोक तथा गोलोक आदि के प्राप्ति को लक्ष्य करके ऊर्ध्वमुख भगवच्चरणों का उन-उन स्थानों पर अंकन किया जाता है। तन्त्र शास्त्र में शक्ति के लिए बिन्दु शब्द प्रयुक्त किया जाता है। बिन्दु का प्रतीक वर्तुलाकार है अतः शक्ति के उपासक वर्तुलाकार तिलक बनाते हैं। उपासना के भी अनेक भेद हैं। प्रथमतः पाँच भेद हैं, जो कर्मकाण्ड तथा उपासना की दृष्टि से बड़ा महत्त्व रखते हैं। सनातन सम्प्रदायों में पञ्चदेवोपासना बहुत प्रसिद्ध है। पंचदेवता—गणेश, सूर्य, शिव, शक्ति तथा विष्णु हैं और इनके सम्प्रदाय-गाणपत्य, सौर, शैव, शाक्त तथा वैष्णव कहे जाते हैं। इन पंच देवों के पौराणिक आख्यान और प्रकृति के आधार पर इनके तिलकों के आकार में भेद हो जाता है। प्रथमतः तो पाँच ही भेद होते हैं पर आगे चलकर अवान्तर अनेक भेद हो जाते हैं। जैसे गणेश जी के तिलक में शैव और वैष्णव दोनों तिलकों का सामञ्जस्य होता है। यतः श्री गणेश जी के प्रादुर्भाव के विषय में तीन

कथायें मिलती हैं—पहली कथा पार्वती माता के शरीर के उद्वर्तन चूर्ण से सम्बन्ध रखती है।[१] दूसरी कथा भगवती माता पार्वती और भगवान शिव के हस्तिनी और हस्ती के स्वरूप से सम्बन्ध रखती है। तीसरी कथा भगवान् श्री कृष्ण के श्री गणेश के रूप में अवतार लेने से सम्बन्ध रखती है[२]। सौर पुराण के अनुसार शिव और गणेश एक ही हैं। इसलिए श्री गणेश जी के तिलक में शिव के तिर्यक् और विष्णु के ऊर्ध्व दोनों के समन्वय से तिलक बनता है। सत्वगुण प्रधान भगवान् विष्णु जगद् रक्षक हैं और सृष्टि, स्थिति, प्रलय नियामक होने से त्रिदेव रूप होने पर श्री भगवान् सूर्य की विष्णु रूप में ही मान्यता है।

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्नं तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥[३]

तथा—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती-
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः०।[४]

अतः सौर सम्प्रदाय में विष्णुसम्बन्धी ऊर्ध्वपुण्ड्र की मान्यता है। भगवान् शिवस्वरूप व्यापक ब्रह्म का तिलक तिर्यक् रूप में या सर्वव्यापकता के अवबोधनार्थ अव़लेप रूप में या समष्टि अथवा समान रूप में किया जाता है। भगवती शक्ति जगत्कर्त्री के रूप में बिन्दु शब्द से प्रसिद्ध है। शाक्त सम्प्रदाय में शक्ति का दूसरा नाम बिन्दु है। बिन्दु में क्षोभ होने से सृष्टि होती है। अभिनवगुप्त प्रभृति आचार्यों ने बिन्दु और शक्ति को पर्यायवाची माना है। बिन्दु का प्रतीक गोल चिह्न है। अतः

---

१. शिव पु० कुमार ख० अ० १३ एवं स्क० पु० माहे० ख० (कौ० ख०) अ० २६
२. ब्रह्म वै० पु० गणपति ख० अ० ८
३. भविष्योत्तर पु० आदित्य हृदय श्लो० ११७
४. ब्रह्मोक्तयाज्ञ० स्मृति अ० २, श्लो० १२४

शक्ति का तिलक गोल बिन्दु रूप है और इसीलिए शाक्त सम्प्रदाय का तिलक वर्तुलाकार तथा माता के वात्सल्य एवं अनुराग के कारण अरूण वर्ण का किया जाता है। देवीभागवत में शाक्त तिलक के लिए सिन्दूर, कस्तूरी तथा वर्तुलाकार का निर्देश है।

कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना।
समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥[१]

भगवान् विष्णु का तिलक ऊर्ध्वरेखावाला होता है। अतः वैष्णवगण ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक बनाते हैं।

इन पांचों सम्प्रदायों के तिलकों में वैष्णव और सौर के तिलक प्रायः एक समान है। गाणपत्य में शैव और वैष्णव दोनों तिलकों का सामञ्जस्य है। अतः मुख्य तिलक हुए शैव, शाक्त तथा वैष्णव। ब्रह्माजी की उपासना का कोई सम्प्रदाय नहीं है यतः कथा भेद से एक बार गायत्री माता के तथा एक बार भगवान् विष्णु के शाप से ब्रह्मा जी की उपासना निषिद्ध है।

इन तीन प्रकार के तिलकों में अपनी भावना, आराधना, उपासना एवं अपने भाव के अनुसार भक्तजनों ने कुछ घटाया और कुछ बढ़ा दिया है, जिससे उनके अनेक अवान्तर भेद हो गये हैं। जैसे श्री रामानन्द सम्प्रदाय में प्रथम एक रामानन्द स्वामी का तिलक फिर इसके प्रधान चार भेद—१. श्री, २. लश्करी, ३. चतुर्भुजी, ४. बेंदी या बिन्दी है। फिर इसमें रसिकमहात्मा आदि के भावों के अनुसार और भी भेद हो गये हैं—५. रसिकाचार्य श्री रामचरणदास जी, ६. महात्मा जीवारामजी, ७. युगलप्रियाजी, ८. महात्मा जनक किशोरी शरण जी, ९. श्री रूपकलाजी, १०. श्री रूपसरसजी, ११. श्री निध्वाचार्यजी, १२. श्री रामसखेजी, १३. शीलमणिजी, १४. महात्मा कामदेवेन्द्रमणि जी के तिलक। इसी प्रकार श्री

१. दे० भा० उत्तरादर्ध ९/२/३३

रामानुज सम्प्रदाय में तेंगलै तथा बड़गलै भेद से, कृष्णाश्रयी वैष्णव सम्प्रदाय में श्री वल्लभाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य, श्री चैतन्यमहाप्रभु और श्री मध्वाचार्य आदि के तिलक भेद से अवान्तर अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं। अभी तक जो प्रमुख-प्रमुख तिलक उपलब्ध हुए हैं, उनकी संख्या ७४ है। अवान्तर भेदों से यह १०० के लगभग हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी नये-नये सम्प्रदाय उभरते रहते हैं तथा कुछ नये विचार के लोग लोकलज्जा के कारण भी अपने कुलपरम्परागत तिलकों में ह्रस्वता या मनमाना रूपान्तर करते रहते हैं। इससे भी तिलक के रूपों की संख्या बढ़ती रहती है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी तिलक के भेद हैं, जिनके विषय में विशेष जानकारी मुझ जैसे सामान्य जनों को अभी तक नहीं है। इस प्रकार के तिलकों की संख्या सात है। इनको सबके अन्त में रखा गया है। कुछ स्थलों में परस्पर भेद भी है, जैसे जल में मुख देख कर तिलक करना और जल में मुख न देखना इत्यादि विरोधों को सम्प्रदायानुसार समझ लेना चाहिये।

इसको इस रूप में संकलित करने में Incredcle India page 49 By. P. Thomas. Published. by D. B. Taraporewala Sons and Company Pvt Ltd Treasure House Books 210 Dada Bhai Nauraji Road Bombay—

डा० वंशीधर त्रिपाठी की Sadhus of India तथा **डा० भगवती प्रसाद सिंह** की 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' नामक पुस्तकों से बड़ी सहायता मिली है। इन सबों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता एवं आभार प्रकट करता हूँ। इस पुस्तक के प्रणयन की प्रेरणा इन पुस्तकों से प्राप्त हुई है।

तिलक धार्मिक अनुष्ठान या कर्म काण्ड का एक अंग है। तिलक किन-किन अंगों पर लगाने चाहिये तथा तिलक के उपादान द्रव्य कौन-कौन से हैं? इसके लिए स्मृतियों एवं पुराणों के वचन प्रमाण रूप से

संगृहीत किये गये हैं। इनके अतिरिक्त तन्त्र प्रक्रिया के अनुसार वशीकरण एवं आकर्षण आदि के लिए भी तिलक का प्रयोग किया जाता है। वशीकरणार्थ हल्दी, आकर्षणार्थ भृङ्गराज का रस और बच्चों को नजर (दृष्टि दोष) न लगे इसके लिए काला बिन्दु लगाया जाता है।

तिलक क्या वस्तु है? क्यों लगाना चाहिए? तिलक की उपयोगिता, तिलकों के शैव, शाक्त, वैष्णव आदि भेदों के कारण तथा शैव आदि तिलकों के स्वरूप-भेद के कारण इन सभी विषयों पर ऊहापोह स्वयं किया गया है। इसके लिए शास्त्रीय वचनों का, अनुमान का और विशेष रूप से कल्पना का भी सहारा लिया गया है। संभव है कहीं यह सहारा अतिरंजित तथा निर्मूल भी हो। अतः इस विषय के तलस्पर्शी विद्वानों से क्षमा करने की, सुधारने की एवं सूचित करने की प्रार्थना है। तिलकों के अवान्तर भेदों के उद्भावक संत-महात्मा तथा विद्वानों के इतिवृत्त के लिए इनकी परम्परा के ग्रन्थों से तथा इनकी परम्परा के विज्ञ ज़नों से जानकारी ली गई है। संभव है इसमें कहीं भ्रान्ति और भूल भी हो गयी हो। अतः 'संत हृदय नवनीत समाना' के अनुसार मुझे अपनायेंगे और भविष्य में सुधार के लिए निर्देश देने की कृपा करेंगे।

अन्त में—

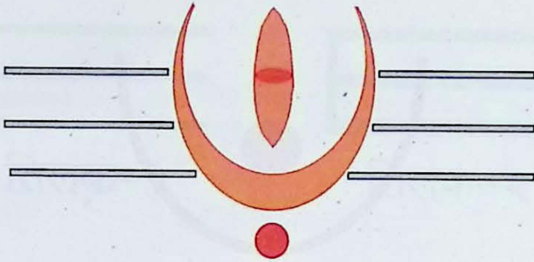
गच्छतः स्खलनं क्वापि भवेदेव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

इन शब्दों के साथ संतों, महात्माओं, धर्मप्राण तथा कर्मकाण्ड अनुरागी जनों के अनुरंजनार्थ प्रसादरूप से इसे प्रस्तुत करने से पूर्व माता अन्नपूर्णा तथा भगवान विश्वनाथ जी के चरण कमलों में समर्पित करता हूँ। शम्

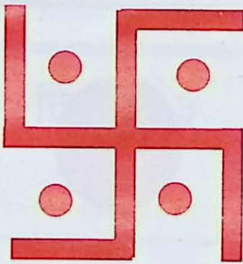
साम्बसदाशिवाय नमः

मुरलीधर पाण्डेय

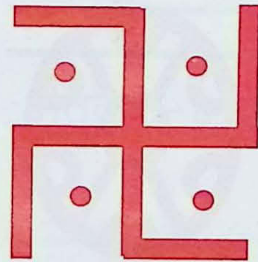
श्री गणेश तिलक



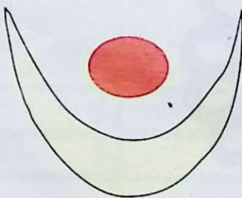
तिलक-१



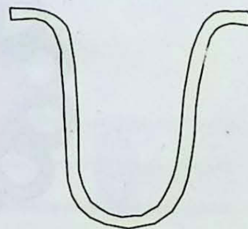
तिलक-२



तिलक-३

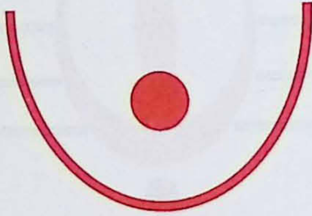


तिलक-४



तिलक-५

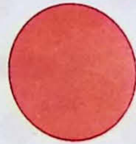
श्री सूर्य तिलक



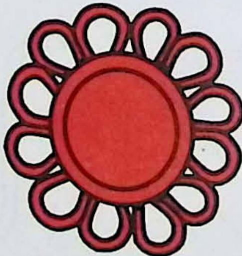
तिलक–१



तिलक–२(क)

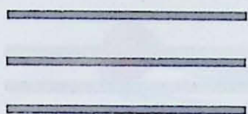


तिलक–२(ख)

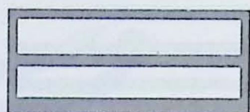


तिलक–३

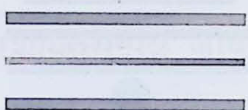
श्री शैव तिलक



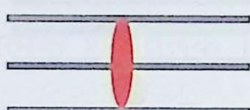
तिलक–१



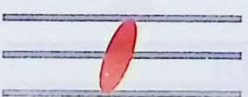
तिलक–२



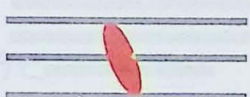
तिलक–३



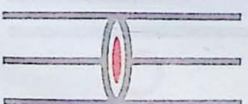
तिलक–४



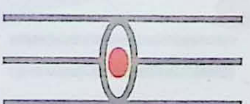
तिलक–५



तिलक–६



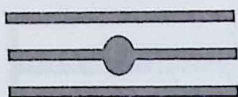
तिलक–७



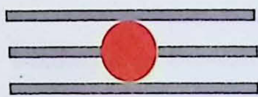
तिलक–८

श्री शैव तिलक

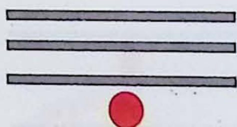
(शिवशक्तिसम्पन्न तिलक)



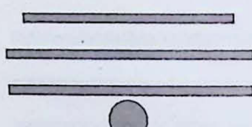
तिलक-९



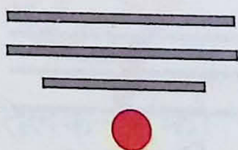
तिलक-१०



तिलक-११



तिलक-१२



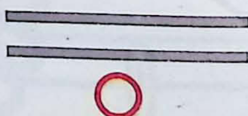
तिलक-१३



तिलक-१४



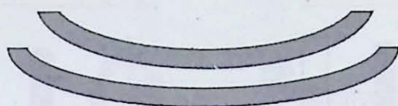
तिलक-१५



तिलक-१६

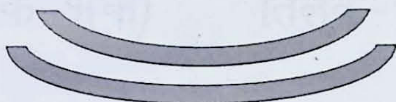
श्री शैव तिलक

(जीवब्रह्मरूप केवल शिवबोधक शैवतिलक)



तिलक-१७

(शक्तिसम्पन्न जीवब्रह्मरूपात्मक शैवतिलक)





तिलक-१८

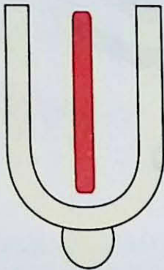




तिलक-१९

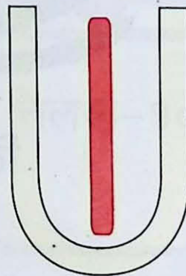
श्री रामानुजीय वैष्णव तिलक

(तेंगलै शाखा)



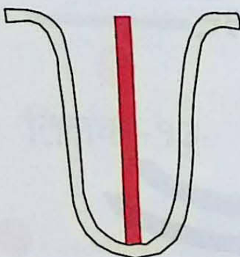
तिलक–१

(बड़गलै शाखा)



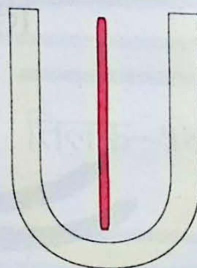
तिलक–२

(पांचरात्र सम्प्रदाय)



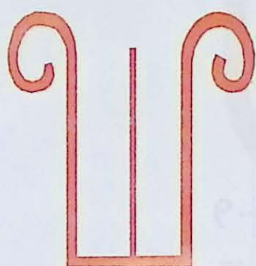
तिलक–३

(वैखानस सम्प्रदाय)



तिलक–४

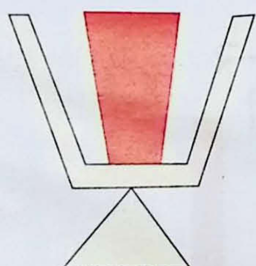
श्री माध्व वैष्णव तिलक



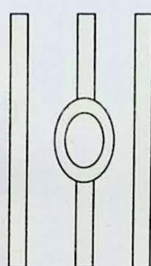
तिलक-१(क)



तिलक-१(ख)

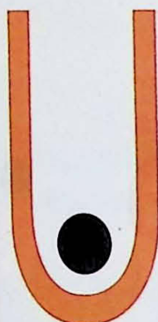


तिलक-२

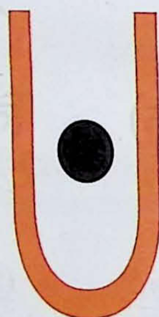


तिलक-३

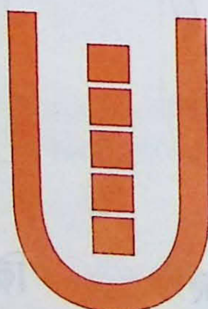
निम्बार्क वैष्णव तिलक



तिलक-१

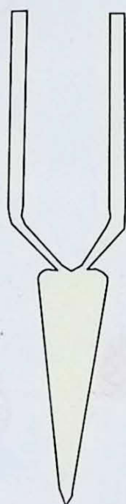


तिलक-२



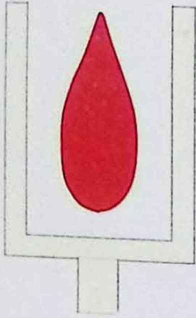
तिलक-३

गौडीय तिलक

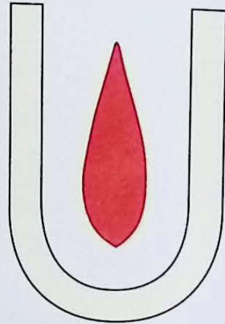


तिलक–१

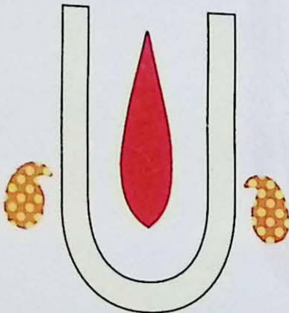
श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक



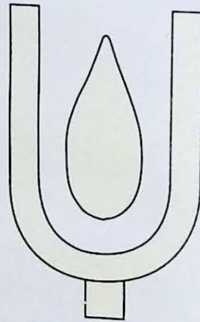
तिलक-१



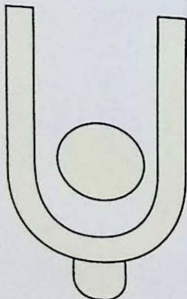
तिलक-२



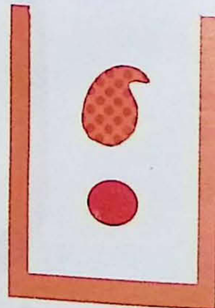
तिलक-३



तिलक-४



तिलक-५

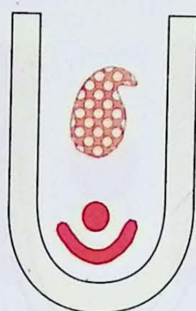


तिलक-६

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक



तिलक-७



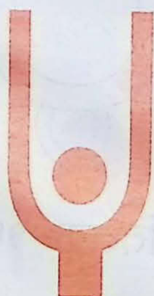
तिलक-८



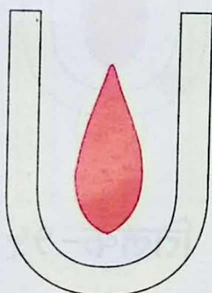
तिलक-९



तिलक-१०

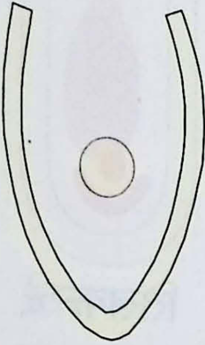


तिलक-११

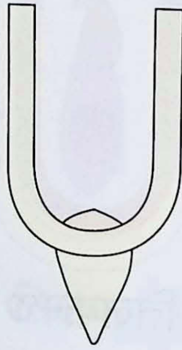


तिलक-१२

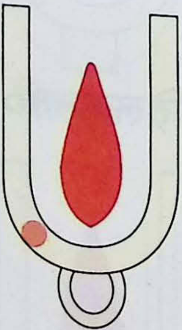
श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक



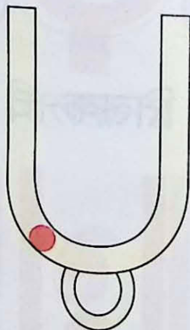
तिलक-१३



तिलक-१४

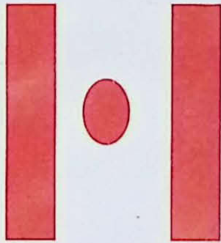


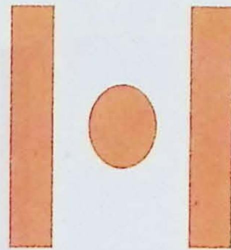
तिलक-१५

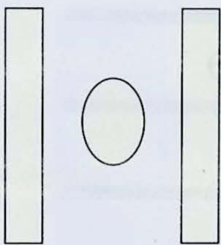


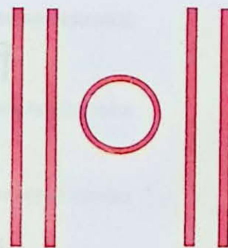
तिलक-१६

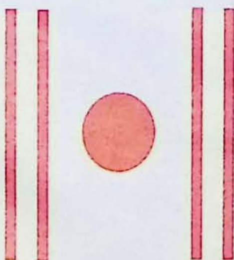
श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक

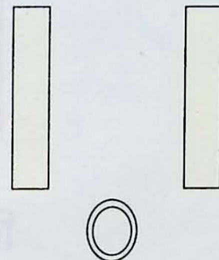

तिलक–१


तिलक–२

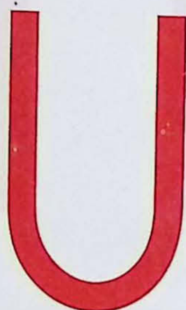

तिलक–३


तिलक–४

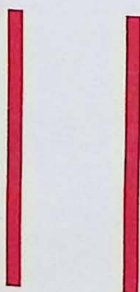

तिलक–५


तिलक–६

पुष्टिमार्गीय वैष्णव तिलक

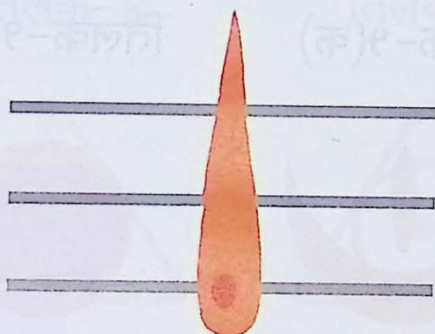


तिलक–१



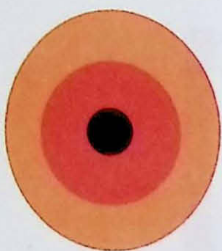
तिलक–२

स्मार्त तिलक

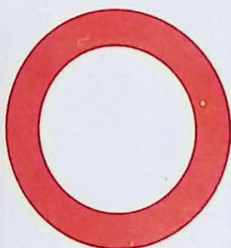


तिलक–१

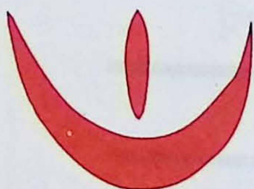
शाक्त तिलक



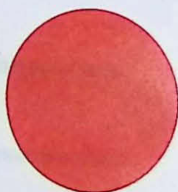
तिलक–१(क)



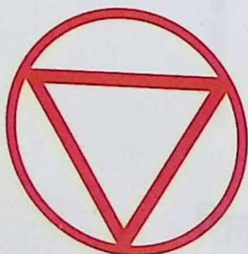
तिलक–१(ख)



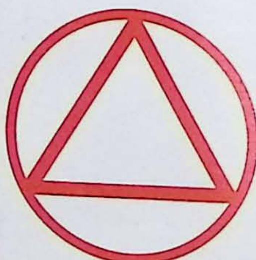
तिलक–१(ग)



तिलक–१(घ)

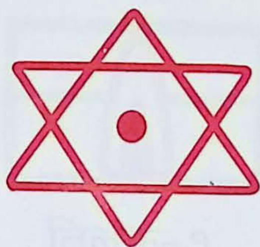


तिलक–२

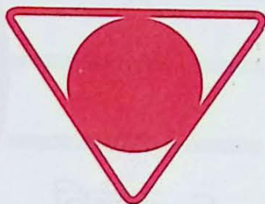


तिलक–३

शाक्त तिलक



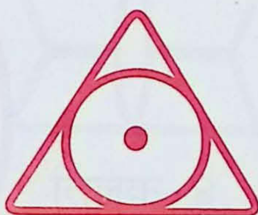
तिलक-४



तिलक-५



तिलक-६



तिलक-७

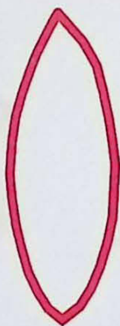


तिलक-८

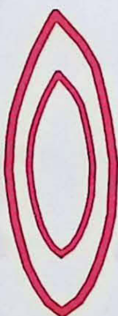


तिलक-९

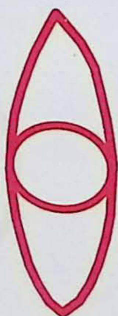
शाक्त तिलक



तिलक–१०

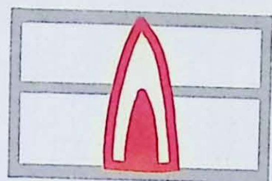


तिलक–११

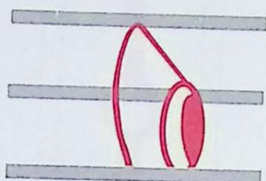


तिलक–१२

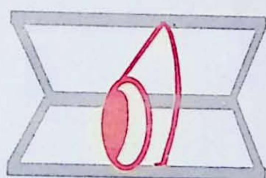
शैव गुह्यशाक्त मिश्रित तिलक



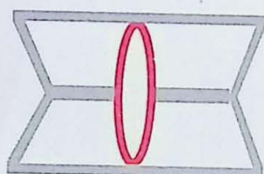
तिलक–१



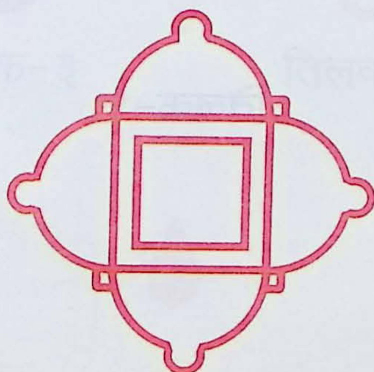
तिलक–२



तिलक–३



तिलक–४



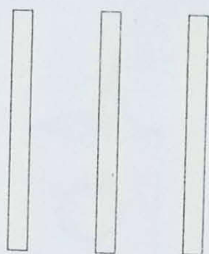
तिलक–५

श्री कबीर सम्प्रदाय का तिलक

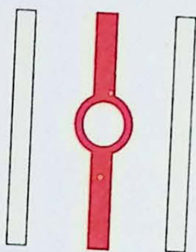


तिलक–१

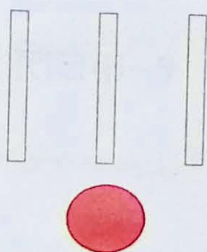
मिश्रित वैष्णव तिलक



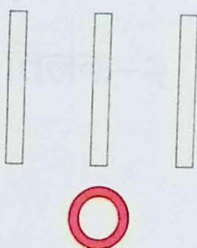
तिलक–१



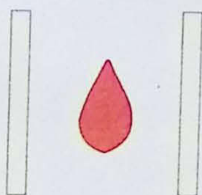
तिलक–२



तिलक–३



तिलक–४



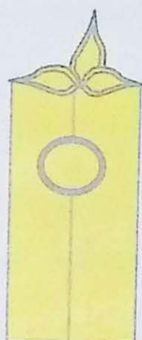
तिलक–५

सम्प्रदाय रहित वैष्णव तिलक

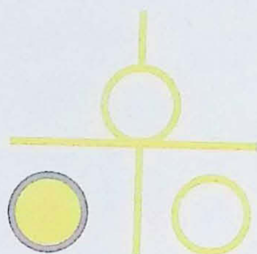


तिलक–१

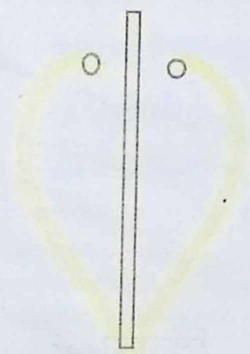
अनिर्णीत तिलक



तिलक–१



तिलक–२

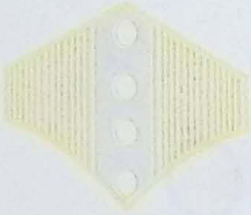


तिलक–३

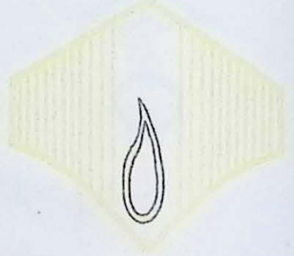


तिलक–४

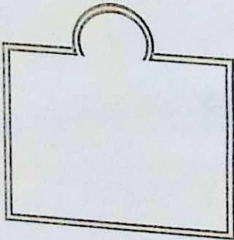
अनिर्णीत तिलक



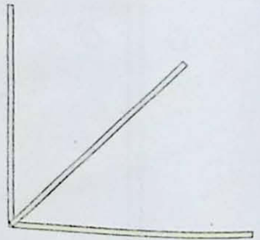
तिलक–५



तिलक–६



तिलक–७



तिलक–८

तिलकमाहात्म्य

ललाटे तिलकं कृत्वा सन्ध्याकर्म समाचरेत्।
अकृत्वा भालतिलकं तस्य कर्म निरर्थकम्॥[१]

मृत्तिका चन्दनं चैव भस्म तोयं चतुर्थकम्।
एभिर्द्रव्यैर्यथाकालं तिलकं तु समाचरेत्॥[२]

तिलकेन विना विप्रो पुण्यस्त्री कुङ्कुमं विना।
द्वावेतौ गर्हितौ लोके दैवे पैत्र्ये च कर्मणि॥[३]

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम्।
उभयं चन्दनेनैव अभ्यङ्गोत्सवरात्रिषु॥[४]

ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा त्रिपुण्ड्र तिलक के लिए अलग-अलग समय तथा द्रव्य निर्धारित है। स्नान-दान आदि के समय तथा होम के समय चन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र करें। होम के बाद भस्म से तिर्यक् त्रिपुण्ड्र करे। पुण्ड्र का अर्थ है इक्षु (ईख)। अतः ऊर्ध्वपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र तिलक ईख के सरल रेखा के समान तथा देखने में मधुर एवं सौम्य लगे ऐसा तिलक बनाना चाहिये।

श्राद्धकाले तथा दाने होमे देवार्चने तथा।
विधिवत् तिलकं कुर्याद् मृदा वा चन्दनेन वा॥

धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं तु स्नानान्ते च विशेषतः।
तर्पणे होमकाले च सायं प्रातः समाहितः॥[५]

---

१. प्रयोग पारिजात
२. व्याघ्रपादस्मृति—आचार धर्म वर्णन, श्लो० ४२
३. व्याघ्रपादस्मृति—श्राद्धवर्णन १९७
४. प्रयोग पारिजात
५. व्याघ्र पादस्मृति आ० ध० व० श्लो० ३४-३५

तिर्यक् पुण्ड्रं न कुर्वीत यावद्धोमं समाचरेत्।

शिलागन्धानुलेपेन मार्जारोच्छिष्टभोजनात्।
स्वरूपदर्शनादप्सु भाग्यहीनो भवेन्नरः॥

धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं तु स्नानान्ते च विशेषतः।
गृहानागत्य होमान्ते भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम्॥

स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्यात् होमं कृत्वा तु भस्मना।
देवानभ्यर्च्य गन्धेन त्रिपुण्ड्रं पापनाशनम्।

आशौचेऽपि न चाभ्यंगे विवाहे चन्दनादिना॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदाकार्यं श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
सूतके समनुप्राप्ते वर्जनीयः प्रयत्नतः॥[१]

तिलक के उपादान द्रव्य

मृत्तिका चन्दनं भस्म तथा तोयं चतुर्थकम्।
एभिर्दव्यैर्यथाकालं तिलकं तु समाचरेत्॥[२]

हारिद्रेन च चूर्णेन कुंकुमेन सुगन्धिना।[३]
हरिद्रासारसंभूतां तां नरो धारयेच्छ्रियम्॥[४]

वशिष्ठ स्मृति (२) में यहीं पर द्वादश तिलक लगाने का विधान, द्वादश अंगविशेषों का वर्णन तथा उन-उन देवताओं के नाम वर्णित हैं।[५]

---

१. व्याघ्रपादस्मृति आचारधर्मवर्णन, श्लो० ३४-४१
२. वही ४२
३. वशिष्ठस्मृति अ० ६, श्लो० ५१
४. वही ५५
५. 'स्मृति सन्दर्भ' में वशिष्ठस्मृति नाम से पृथक्-पृथक् दो ग्रन्थ संकलित हैं। यहाँ वशिष्ठस्मृति द्वितीय गृहीत है।

इसका निरूपण उपोद्घात में भी किया गया है। तिलक का आकार एवं स्वरूप किस सम्प्रदाय का कैसा होना चाहिए इसका उल्लेख "ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्य' स्मृति में मिलता है—

भ्रुवोर्मण्डलमध्यस्थं तिलकं कुरुते द्विजः।
तावेवालङ्कृतौ कृत्वा लिङ्गभेदः स उच्यते॥

वेणुपत्रदलाकारं वैष्णवं तिलकं स्मृतम्।
अर्धचन्द्रं तथा शैवं शाक्तेयं तिर्यगुच्यते॥

चतुष्कोणमिति स्पष्टं विकरालमुदाहृतम्।
पैशाचं बिन्दुसंयुक्तं तिलकं धर्मनाशनम्॥

ललाटादिकपालान्तं केशवादिन्यसेद्धरिम्।[१]

आज भी काशी में किसी संन्यासी या स्वामी जी के दर्शन के समय उनके ब्रह्माण्ड पर बिल्व पत्र रखकर—'ॐ नमो नारायणाय' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ललाट पर भी उत्तम द्रव्य चन्दन, केशर, कस्तूरी, कुंकुम तथा गंगा आदि नदियों की पवित्र मृत्तिका, गंगाजल, पुष्प तुलसीदल, बिल्वपत्र आदि से जीवात्मा का पूजन करके तब अपने अभीष्ट राम, कृष्ण आदि देवताओं का पूजन किया जाता है। भारत के अन्य प्रदेशों की बात तो मैं नहीं जानता किन्तु आज भी पंजाब, जम्मू कश्मीर आदि प्रदेशों में किसी धार्मिक अनुष्ठान से पूर्व संकल्प के अनन्तर जीवात्म पूजन की विधि पूरी की जाती है। जीवात्म की मूर्ति केवल जम्मू के रघुनाथ मंदिर में प्रतिष्ठापित है। वहाँ जीवात्मदेव और परमात्मदेव की मूर्तियाँ साथ स्थापित हैं। इसी जीवात्मदेव के पूजन के लिए ललाट पर कस्तूरी, केशर आदि उत्तम द्रव्यों से काले, पीले एवं लाल जो चिह्न विशेष बनाये जाते हैं उन्हें तिलक कहा जाने लगा। महिलायें प्रातः स्नान

१. ब्रह्मोक्त याज्ञ० स्मृ०, २, ३०-३३

आदि के अनन्तर ललाट पर अलंकृत रूप से जो छोटा चिह्न विशेष (बिन्दी) बनाती थीं, उसे लघु (ह्रस्व) बोध के निमित्त 'तिलकी' कहा जाने लगा। यही तिलकी शब्द अपभ्रष्ट हो 'टिकुली' बन गया है और यही तिलक शब्द हिन्दी में टीका बन गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—जो पंचही मन लागी ही नीका, तो करहू रघुनायक टीका'। टीका शब्द पुस्तकों की टिप्पणी के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यहाँ टीका शब्द संस्कृत के 'टीकृ गतौ' से बना है, जिसका अर्थ 'टेकना' या 'सहारा' होता है। ग्रन्थों में कठिन पदों या वाक्यों को समझने में टीका सहारा देती है। नारियों का टीका तथा सिन्दूर धारण भी एक प्रकार का जीवात्म पूजन ही है। यह सिन्दूर पहले पारा आदि उत्तम द्रव्यों से उत्कृष्ट रंग वाला बनाया जाता था। सिन्दूर में पारा होने से केशों में लीक्षा-जूआँ आदि भी नहीं पड़ते। आजकल तो सीसा, रांगा आदि धातुओं से सस्ते किस्म का सिन्दूर बनाया जा रहा है, जो हानिप्रद है।

यही तिलक का रूप और निमित्त है। इस तिलक के स्थान पर वैदिक यज्ञ की परम्परा के अनुयायी यज्ञावशिष्ट पवित्र भस्म को ललाट पर तथा शरीर के विशिष्ट अंगों पर उन-उन अंगों के विशेष देवताओं के निमित्त लगाते हैं, किन्तु भक्तिमार्ग के अनुयायी परमात्मा के पूजन से पूर्व जीवात्मपूजन के समय ललाट, ग्रीवा, बाहुमूल आदि द्वादश अंगों पर भक्ति भावना से प्रोत भिन्न-भिन्न प्रकार के चिह्न विशेष (तिलक) बनाते हैं। पुराणों में तथा भक्तिसम्प्रदाय के ग्रन्थों में इस तिलक के विषय में विस्तृत चर्चा है।

श्री गणेश तिलक - १

आदित्यस्तु सदापूज्यस्तिलकं स्वामिनस्तथा।
महागणपतेश्चैव सिद्धिं कुर्वन् समाप्नुयात्॥[१]

श्री गणेशजी का आविर्भाव पुराणों में तीन प्रकार से वर्णित है। प्रथम भगवती माता उमा के अंगराग उद्वर्तन से,[२] द्वितीय भगवान् श्री कृष्ण का श्री गणेश रूप में प्रकट होने से[३] तथा एक बार करिणी एवं करी के रूप में माता पार्वती और श्री शंकर जी के विहरण करने से। सौर पुराण के अनुसार श्री गणेश जी साक्षात् शिव ही हैं। अतः गणेश तिलक में तिर्यक् रेखा[४], भगवान् श्री विष्णु का तिलक ऊद्ध्‍र्वपुण्ड्र तथा माता उमा के अंगराग उद्वर्तन से उद्भूत होने के कारण शक्ति तिलक बिन्दुरूप, अरूणवर्ण सिन्दूरादि से किया जाता है। वैष्णव तिलक के समावेश के कारण नीचे आसन तेंगलै और बड़गलै भेद से दिया जाता है और नहीं भी दिया जाता है। श्री गणेशजी स्वयं शिवस्वरूप भी हैं और शिवतनय भी हैं। अतः श्री शिव जी का विशेष प्रिय अवतंस अद्र्धचन्द्र भी अंकित किया जाता है। पुराणों में श्री गणेश जी को विष्णुशिवात्मक भी कहा है। शिव पुराण में गणेश की अर्चना सिन्दूर से बतायी गई है तथा स्कन्द पुराण में गणेश पूजन को बालचन्द्र पूजन भी कहा गया है।

---

१. ब्रह्मोक्त याज्ञ० अ० १०, २३-२४
२. स्क० पु० माहे० ख० 2—कौ० ख०, अ० २७ एवं शिव पु० कु० ख० अ० १३
३. ब्रह्म वै० पु० गणपति ख० अ० ८
४. उपोद्घात पृ० १४

श्री गणेश तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० १ देखें।

विनायको देवदेवो महाविष्णुशिवात्मकः।
षडक्षरस्तस्य मन्त्रो महासिद्धिप्रदायकः।[१]

आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि।
तस्मात् त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः॥[२]
त्वां तत्र पूजयित्वेत्थं बालचन्द्रं च पूजयेत्।[३]

मुद्गल पुराण के अनुसार श्री गणेश त्रिदेवात्मक हैं। अत इनके तिलक की रचना मलयचन्दन या केशरयुक्त मलयचन्दन अथव कुंकुम से की जाती है। इस तिलक की रचना श्वेत, पीत तथा अरुण तीनों वर्णों से मिश्रित की जाती है अथवा किसी एक वर्ण से भी बनायी जाती है।

इस तिलकाकृति में शैव, वैष्णव एवं शाक्त तिलकों का समावेश मिलता है तथा सभी धार्मिककृत्यों में अग्रपूज्य गणेश जी हैं। अतः इनके तिलक का भेद सर्वाधिक है। रामानुज सम्प्रदाय में एक वैष्णव गणेश भी हैं। (तिरुपति से तिरुमलै श्री वेंकटेश्वर मन्दिर जाते समय रास्ते में एक वैष्णव गणेश जी का छोटा मन्दिर है) अंकित तिलक चित्र सं० १ में तेंगलै सम्प्रदाय के अनुसार आसन दिया गया है।

----

१. गणेश पु० अ० ३७
२. शि० पु० कुमार खण्ड अ० १८ श्लोक ९
३. वही श्लोक ४६

श्री गणेश तिलक - २

श्री गणेशजी को ऊँकार स्वरूप माना जाता है। आह्निकचन्द्रिका ग्रन्थ के अन्त में गणेशाथर्वशीर्ष मुद्रित है। इस पर श्री सायणाचार्य जी ने भाष्य किया है। उसमें उन्होंने लिखा है कि श्री गणेशजी का प्रतीक 'ॐ' है। वहीं पर उन्होंने वायुपुराण तथा शिवपुराण की कथा भी उद्धृत की है, जिसमें लिखा है कि पार्वती के द्वार पर द्वारपाल के रूप में स्थित श्री गणेश जी के सिर के छिन्न होने पर त्रिदेव ने श्री गणेश जी का स्मरण किया तब श्री गणेश जी ॐ के रूप में प्रकट हुए। उसी ॐ का प्रतीक 卍 अथवा 卐 है, इसकी शुचि अशुचि दोनों ही अवस्थाओं में पूजा की जा सकती है, जो 'ॐ' इस प्रणव रूप में श्रुतिमूल होने से संभव नहीं है। अत: इसे श्री गणेश का प्रतीक माना जाता है। भिन्न-भिन्न देवताओं के भिन्न-भिन्न प्रतीक हैं। जैसे अधोमुख त्रिकोण ▽ शक्ति का तथा उद्धर्वमुख त्रिकोण △ सदाशिव का प्रतीक है। उसी प्रकार उपरिलिखित चिह्न श्री गणेशजी का प्रतीक है। इसे स्वस्तिक चिह्न भी कहा जाता है। सु + अस्ति = स्वस्ति, इसका अर्थ होता है, अच्छा होना, अर्थात् मंगल। इसलिए श्री गणेश जी को मंगलमूर्ति भी कहते हैं। अत: स्वस्तिक श्री गणेश की आकृति का प्रतीक है। इस चिह्न में ऊपर की ⌈ यह रेखा श्री गणेश जी का शुण्ड है। नीचे की ⌉ यह रेखा वाम हाथ की शान्तिमुद्रा है। पीछे की ⌊ यह रेखा दक्षिण हाथ की वरद एवं अभय मुद्रा है और सब से नीचे की यह ⌋ रेखा दक्षिण पाद है। इस प्रकार ३ ४ 卐 १ २ क्रमश: शुण्ड, वामहस्त, दक्षिणहस्त एवं पाद हैं। स्वस्तिक के अन्दर की बिन्दी गणेशजी के बीजमन्त्र 'गं' का प्रतीक है। ये उत्तरमुख शान्तिप्रिय, 'वरद', गणेश का प्रतीक है। इसके विपरीत दक्षिण मुख और विपरीत हस्तवाले

'विनायक', गणेश का प्रतीक है, जो उग्र माने जाते हैं और दुष्ट दमन आदि के लिए पूजे जाते हैं। वामहस्त में मोदक लिए हुए वरद गणेश और दक्षिण हस्त में मोदक लिए 'विनायक' गणेश माने जाते हैं। विवाह आदि माङ्गलिक कार्यों में वरद गणेश चित्रित किये जाते हैं तथा अभिचार आदि उग्र कर्मों में श्री विनायक की आराधना की जाती है, जिसे श्री गणेश तिलक सं० ३ में स्पष्ट किया जायेगा।

प्रतीक उपासना का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में विशद्रूप से तथा अन्य उपनिषदों में भी प्राप्त होता है।

श्री गणेश तिलक - ३

यह आकृति 'विनायक' गणेश का प्रतीक है। इसे स्वस्तिक भी कहा जाता है। स्वस्तिक का अर्थ नं० 2 के चित्र में लिखा गया है। इन विनायक गणेशजी का दक्षिण कर नीचे झुका हुआ है और वाम कर ऊपर उठा है। इस मुद्रा को कुछ कोपयुक्त मुद्रा कहते हैं। विघ्न, वाधा उपद्रव आदि के निवारणार्थ इस मुद्रा में श्री विनायक गणेशजी का स्मरण करते हैं और इस स्वस्तिक का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार के स्वस्तिक को कुछ विद्वान् शक्ति का प्रतीक तथा शक्ति सम्प्रदाय का तिलक भी मानते हैं।

श्री गणेश तिलक - ४

रामानुज वैष्णव के बड़गलै सम्प्रदाय के अनुसार यह ऊर्ध्वमुख अर्धचन्द्राकार श्री गणेश जी के तिलक की आकृति है। इसमें आसन नहीं दिया गया है और प्रभु की आह्लादिनी शक्ति को बिन्दुरूप से अंकित किया गया हैं।

अथवा अर्धचन्द्राकार शैव तिलक और बिन्दुरूपाशक्ति के होने से शाक्त-शैव समन्वित यह तिलकाकृति है। कहा भी है—''अर्द्धचन्द्रं तथा शैवम्[१]''।

श्री गणेश तिलक - ५

शुभ्रवर्ण मलय चन्दन से ऊर्ध्वमुख दो रेखायें बनायी जाती हैं। ये दोनों रेखायें ऊपर की तरफ थोड़ी चौड़ी होती जाती हैं। सबसे ऊपर चलकर बाहर की ओर दोनों रेखायें थोड़ी मुड़ी रहती हैं। महाराष्ट्र के कुछ श्रीगणेशोपासक ऐसा तिलक लगाते हैं। कुछ लोग इसी आकृति का तिलक कुंकुम या केशर मिश्रित मलय चन्दन से भी बनाते हैं। इसमें आसन नहीं दिया जाता है।

----

१. ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यस्मृति प्रक० २, श्लोक ३२

श्री सूर्य तिलक - १

आदित्यस्तु सदा पूज्यः।[१]

सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च्।[२]

संसार के चल-अचल सभी के समष्टि रूप आत्मा सूर्य है। सौर सम्प्रदाय के इस तिलक में रक्तचन्दन या कुंकुम से ललाट पर अंगुष्ठमात्र ऊँचा और मध्य में सूर्यप्रतीक वर्तुल बिन्दु होता है। रेखा और बिन्दु दोनों अरुणवर्ण के होते हैं एवं यह तिलक अर्धचन्द्राकार होता है।

प्रतिदिन पञ्चदेवोपासना आवश्यक है। इन पञ्चदेवों के नाम इस प्रकार है—सूर्य, गणेश, शिव, विष्णु और दुर्गा। देवी भागवत के उत्तरार्ध में इन पञ्चदेवों के अतिरिक्त वह्नि का भी समावेश कर षड्देवोपासना का विधान है।

संपूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम्।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥

संपूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने।[३]
सर्वाङ्गे चन्दनं कृत्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः।

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥
सम्पूज्यादौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम्।[४]

---

१. ब्रह्मोक्तयाज्ञ अ० १०, श्लो० २
२. यजु० ७/४२
३. देवी भा०—९, ११, ७२—७३
४. देवी भा० ९, ४८, १२०—१२१

श्री सूर्य तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० २ देखें।

अतः दैनिक उपासना क्रम में सूर्य पूजा का प्रथम स्थान है। यों तो सभी शुभकर्मों के आरम्भ में श्री गणेश जी के पूजन का विधान है किन्तु प्रातः काल पञ्चदेवोपासना अत्यावश्यक है। उसमें भी सूर्य का पूजन और भी अत्यावश्यक है। धर्मशास्त्र कहते हैं कि सूर्य की पूजा के बिना यदि किसी और देव की आराधना की जाती है तो वे देव पाद्य भी स्वीकार नहीं करते हैं।

अपूज्य प्रथमं सूर्यमपरान् यः प्रपूजयेत्।
न तद्भूतकृतं पाद्यं संप्रतीच्छन्ति देवताः ॥[१]

अग्निहोत्राणि वेदाश्च यज्ञांश्च बहुदक्षिणाः।
सूर्यस्यार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः ।।

प्रातः सन्ध्यावसाने तु नित्यं सूर्यं समर्चयेत् ॥[२]
प्रदद्याद् वै गवां लक्षं दोग्ध्रीणां वेदपारगे।।
एकाहमर्चयेद् भानुं तस्य पुण्यं ततोऽधिकम्।।[३]

यः सूर्यं पूजयेन्नित्यं प्रणमेद्वापि भक्तितः।
तस्य योगं च क्षेमं च ब्रध्नस्तुष्टः प्रयच्छति ॥[४]

श्री कृष्णपुत्र साम्बविरचित साम्बपञ्चाशिका (तंत्रग्रन्थ) में श्री सूर्य का परब्रह्मरूप से वर्णन है। इस पर क्षेमराज की टीका में विस्तार है। सभी वैदिक कृत्यों में सूर्योपासना का बड़ा माहात्म्य है। यहाँ तक कि सूर्यास्त हो जाने पर श्राद्ध भोजन नहीं करना चाहिए। वह भोजन राक्षसों को प्राप्त होता है, परन्तु सूर्यास्त होने पर भी सूर्य के प्रतीक रूप में

---

१. भवि० पु० ब्रह्मपर्व ५८, ३५
२. वी मि० पूजा प्रकाश ४, पृ० २४०
३. वही पृ० ५
४. वही पृ० ५

सूर्य के पूजक मगब्राह्मणों को बैठाकर आगे की श्राद्ध क्रिया पूरी करनी चाहिये।

श्राद्धं कृत्वा तु यो भुङ्क्ते रवावस्तंगते सति।
यातुधानैश्च तद्भुक्तं कृतमप्यकृतं भवेत्॥

अस्तंगते यदा सूर्ये न समाप्तिमगात् क्रिया।
मगान् संस्थाप्य यत्नेन कर्ता श्राद्धं समापयेत्॥[१]

इसलिए प्रातः सर्वप्रथम सूर्य पूजन और पूजन से पूर्व सूर्यतिलक का लगाना अत्यावश्यक है। सूर्य त्रिदेवस्वरूप कहे गये हैं।

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः।[२]

इसलिए सूर्य तिलक में विष्णुरूप सूर्य के दोनों चरणों की प्रतीक दो रेखायें तथा मध्य में सूर्यशक्ति रूप बिम्ब का प्रतीक अरुण वर्ण का वृत्ताकार बिन्दु बनाया जाता है।

श्री सूर्य तिलक - २ (क) तथा (ख)

श्री सूर्य भगवान् के इस तिलक में छः आरा है। ये छः षड्ऋतुओं के प्रतीक में या छः मास उत्तरायण और छः मास दक्षिणायन के प्रतीक में हैं अथवा १२ मासों में छः ये सम्मुख हैं और छः इसके पृष्ठभाग में है, ऐसा भी मत है। इस विचार से श्री सूर्य नारायण के भक्तगण रथ का चक्र (पहिया) अंकित करते हैं। इसके लिए ताम्र या पीतल की मुद्रा बनवा

१. स्कन्द पु० श्राद्धोल्लास प्रकरण।
२. भविष्योत्तर पु० आदित्य हृदय, श्लो० ११७

लेते हैं और उसी से अंकित करते हैं पर लोग आलस्यवश या शीघ्रता वश केवल दीर्घ वर्तुल अरुण तिलक लगा लेते हैं। यही वर्तुलाकार तिलक, चित्र 'ख' में दर्शाया गया है।

कार्तिकमास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी को श्री सूर्यषष्ठी कहते हैं। इसदिन व्रत उपवास पूजन तथा अर्घ्यदान का बड़ा महत्त्व है। यह व्रत तीन दिनों का होता है। बिहार में इसका बहुत प्रचार है। अब अन्य प्रदेश में भी यह व्रत मनाया जाने लगा है। इसके पूजन में (अर्घ्यदान में) बहुत से फल तथा पक्वान्न होते हैं। उनमें एक ठेकुआ पक्वान्न भी होता है। इस पक्वान्न पर भगवान् के रथ का जैसा आकार अंकित किया जाता है। इसको बनाने के लिए आटा को गुड़ या चीनी, किसमिस, मुनक्का, दूध, घृत आदि से गूँथ कर लकड़ी के साँचे पर रख कर दबा देते हैं, जिससे साँचे पर बना हुआ चक्र आटा पर उभर आता है। उसे घृत में तल लेते हैं। इस व्रत के प्रसाद में ठेकुआ का बड़ा महत्त्व है। दूर-दूर से लोग मांगने आते हैं और दूर-दूर तक अपने भाई, बन्धु, कुटुम्बी जनों के लिए यह भेजा जाता है।

स्कन्दपुराण के अनुसार इस षष्ठी तिथि को होने वाले व्रत को प्रतिहारषष्ठी व्रत भी कहते हैं। भविष्य पुराण के अनुसार भगवान् सूर्य की कृपा से महाराज युधिष्ठिर को अक्षयपात्र की प्राप्ति हुयी थी, जिससे सहस्त्र शिष्यों के साथ पधारे हुए महामुनि दुर्वासा की भोजन अर्भ्यचना पूरी की गयी थी।

सूर्य तिलक - ३

सूर्यतिलक का ही यह भी एक रूप है। रक्तचन्दन या कुंकुम से ललाट पर धारण किया जाता है।

आदित्य १२ है। अत: बारहों के प्रतीक १२ कोष्ठक का यह तिलक है। बारह आदित्य के नाम इस प्रकार हैं—

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः॥

पञ्चमं तु सहस्त्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः॥

नवमं दिनकृत्प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकः।
एकादशं त्रयीमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च।

द्वादशादित्यनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
दुःस्वप्ननाशनं चैव सर्वदुःखं विनश्यति॥[१]

भविष्य पुराण में चैत्रादि १२ महीनों के स्वामी सूर्य के पृथक्-पृथक् क्रमशः १२ नाम निर्दिष्ट हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वानम्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा और विष्णु।[२]

----

१. भविष्योत्तर पु० आ० हृ० श्लो० १६०—१६३
२. भविष्य पु० ब्राह्म पर्व

भस्म

(विभूतिधारणमाहात्म्य, विभूतिनिर्माणविधि एवं विभूतिधारणविधि)

जो भस्म धारण करता है, वह साक्षात् शिव रूप हो जाता है। स्कन्दपुराण में कहा है—

त्रिपुण्डधारणं येषां विभूत्या मन्त्रपूतया।
ते रुद्रलोके रुद्राश्च भविष्यन्ति न संशयः ॥[१]

विभूतीतिसमाख्याता सर्वपापप्रणाशिनी।
ललाटेऽङ्गुष्ठरेखा च आदौ भाव्या प्रयत्नतः ॥

एवं त्रिरेखया संयुक्तो ललाटे यस्य दृश्यते।
स शैव शिववज्ज्ञेयोदर्शनात् पापनाशनः ॥[२]

सत्त्वं रजस्तमश्चापि दधार च पुरा किल।
अतोऽस्य त्रिविधा पूजा शंकरस्य विधीयते ॥[३]

यहीं पर भस्म बनाने की विधि भी लिखी है—गुणत्रयरूपा धेनु है, गोमय विद्या है, गोमूत्र उपनिषद् और गोवस्त स्मृति है। इत्यादि प्रकार से गोमय और गोमूत्र की महिमा बताकर इन वस्तुओं से वर्णित तिथि में वर्णित मन्त्र से भस्म तैयार करें। जैसे—

अथ तद्वचनं श्रुत्वा शिवोवाक्यमभाषत।
विद्याशक्तिः समस्तानां: शक्तिरित्यभिधीयते।

---

१. स्क० पु० महेश्वरखण्ड (केदार खं०) अ० १३, श्लो० ५६
२. वही, श्लोक ५८—५९
३. पद्म पु० पा० ख० १०८, श्लो० ७३

गुणत्रयाश्रयाविद्या अविद्या च तदाश्रया ॥[१]
गुणत्रयं च दग्धैव तत्सारं धर्तुमर्हथ।
यच्च किञ्चिद्भवेत्तत्र भवद्भिर्ध्रियतां हि तत् ॥

अथाहुस्तत्सुतावाक्यं न दाहोज्ज्वलनं विना।
शिवः प्राह महेशस्य लोचने वह्निरस्ति तव ॥

गुणत्रयमिदं धेनुर्विद्यास्याद्गोमयं शुभम्।
मूत्रं चोपनिषत्प्रोक्तं कुर्याद् भस्म ततः परम्।

वत्सास्तु स्मृतयो यस्यास्तत् संभूतं तु गोमयम्।
आगाव इति मन्त्रेण धेनुं तत्राभिमन्त्रयेत् ॥[२]

इसके बाद लिखा है कि कृष्ण या शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को व्रती होकर 'गावो गावो गाव'० इत्यादि मंत्र से प्राशन करें। दूसरे दिन पवित्र होकर सौवर्ण ताम्र या मृन्मय पात्र में गोमूत्र लेकर 'गन्धद्वारा०' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। फिर गोमय लेकर 'अलक्ष्मीर्भवि०' इस मन्त्र से गोमय का मार्जन करें। इसके बाद 'पञ्चानां त्वेति०' मन्त्र से १४ पिण्ड बना लें और स्वकीय गृह्यसूत्र के अनुसार अग्निस्थापन करके श्री शिव जी के मन्त्रों से (वहाँ श्री शिव जी के अनेक मन्त्र लिखे हैं) तीन दिन तक दाह करें। जब भस्म तैयार हो जाय तब प्रणव से सात बार अभिमन्त्रित करें।[३]

ऊपर के श्लोक में शिव और महेश अलग-अलग दो लिखे हैं। इनके लिए वहाँ एक कथा अध्याय के आरम्भ में दी गयी है—शिव सदाशिव ब्रह्मरूप है, जब उनमें सिसृक्षा होती है तब वे अपने में तीनों गुणों को

---

१. पद्म पु० पाताल खण्ड आ० १०८, श्लो० २४—२५
२. वही, श्लो० २६—२९
३. वही, श्लो० २९—३६

और तीनों वेदों को देखते हैं तथा अपने दक्षिण अंग से ब्रह्मा, वाम से हरि और पृष्ठ भाग से महेश की सृष्टि करते हैं।

शैव तिलक त्रिपुण्ड्र भस्म, मृत्तिका तथा चन्दन तीनों में किसी से बनाया जा सकता है—

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
पूजितोऽपि महादेवो न स्यात् तस्य फलप्रदः॥

तस्मान्मृदादिकर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम्॥[१]

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम्।
उभयं चन्दनेनैव अभ्यंगोत्सवरात्रिषु॥[२]

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम्।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्॥[३]

यह शुभ्र भस्म मोक्षकर होता है। स्कन्द पुराण वैष्णव खण्ड में कहा है कि श्याम तिलक शान्तिकर है, रक्त वश्यकर, पीत श्रीकर एवं शुभ्र मोक्षकर है।

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम्॥[४]

प्रणव से मार्जित भस्म को निम्नांकित विधि से धारण करें—

ततो भस्म समादाय प्रमृज्य प्रणवेन नु।
त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनके विभुम्॥

---

१. लिंग पुराण
२. प्रयोगपारिजात
३. भवि० पु०
४. स्क० पु० वै० ख० मार्गशीर्ष मा० अ० २, श्लोक ३०

स्मरन् नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्।[१]

इसी प्रकार ग्रीवा, बाहुमूल, कूर्पर एवं शिर के पृष्ठ भागों में भी भस्म धारण करें। वहीं पर एक कथा दी गयी है कि श्री हनुमान् जी ने श्री शिव जी की अर्चना की थी और उन्होंने—'ईशानः सर्वविद्यानाम्०, तत्पुरुषाय अधोरेभ्योऽथ०' इत्यादिमन्त्रों से भस्म धारण किया था।[२]

स्कन्द पुराण में भी कुछ विशेषताओं के साथ इसी प्रकार भस्म बनाने और भस्म धारण का माहात्म्य वर्णित है—

कपिलायाश्च संगृह्य गोमयं चान्तरिक्षगम्।
शुष्कं कृत्वाथ संदाह्य विभूत्यर्थं शिवप्रिये।

विभूतीति समाख्याता सर्वपापप्रणाशिनी।
ललाटेऽङ्गुष्ठरेखा च आदौ भाव्या प्रयत्नतः॥

मध्यमां वर्जयित्वा तु अंगुलीयद्वयेन च।
एवं त्रिलेखासंयुक्तो ललाटे यस्य दृश्यते।

स शैवः शिववज्ज्ञेयो दर्शनात् पापनाशनः॥[३]

कुछ विशेषताओं और बड़े विस्तार के साथ लिंगपुराण में भी ऐसा ही वर्णित है—

शोध्यं भस्म यथान्यायं प्रणवेनाग्निहोत्रजम्।
ज्योतिः सूर्य इति प्रातर्जुहुयादुदिते यतः।

---

१. पद्म पु० पा० ख० अ० १०८ श्लोक ६०—६२
२. वही, अ० ११४, श्लो० २८८—२९२
३. स्कन्द पु० माहेश्वर खण्ड (के० ख० ५), अ० १३ श्लो० ५७—५९

ज्योतिरग्निस्तथा सायं सम्यक् चानुदिते मृषा।
तस्मादुदितहोमस्थं भासितं पावनं शुभम्।[1]

शिवपुराण में त्रिपुण्ड्र को योग और मोक्षदायक कहा गया है। शैव साहित्य में त्रिपुण्ड की तीन रेखाओं के नौ-नौ के क्रम में सत्ताइस देवता बताये गये हैं।

शुक्ल यजुर्वेदसंहिता के ''त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् यद्देवेसु त्र्यायुषम् तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्'' (३/६३) मन्त्र के भाष्य में श्री उब्बट ने लिखा है—''त्रीणि आयूंषि समाहृतानि बाल्ययौवन-स्थविराणि त्र्यायुषम्''। यहीं पर श्री महीधर अपने भाष्य में कहते हैं, ''जमदग्नेर्मुनिर्यत् त्र्यायुषम्, त्रयाणां बाल्ययौवनस्थविराणामायुषां समाहारस्त्र्यायुषां तथा कश्यपस्यैतन्नामकस्य प्रजापतेः सम्बन्धि यत् त्र्यायुषं तथा देवेषु इन्द्रादिषु यत् त्र्यायुषमस्ति तत्सर्वं त्र्यायुषं नोऽस्माकं यजमानानामस्तु। जमदग्न्यादीनां बाल्यादिषु यादृशं चरितं तादृशं नो भूयादित्यर्थः''।

भस्म धारण करने वालों में ये प्रमुख हैं—शिवभक्त शैव, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य एवं माधवाचार्यप्रणीत सर्वदर्शन संग्रह में वर्णित नकुलीशशैव, पाशुपतशैव, कालामुखशैव, कापालिकशैव, दशनामी संन्यासी—गिरि, पर्वत, सरस्वती, सागर भारती, पुरी, अरण्य, वन तीर्थ, आश्रम, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक के लिंगायत सम्प्रदाय, जंगमशैव एवं वीरशैव प्रभृति। इनके अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदायों में भी भस्मधारण की मान्यता है। जैसे श्री रामानन्द सम्प्रदाय में एक वर्ग धुई रमाते हैं और सारे शरीर में भस्मलेपन या भस्मस्नान करते हैं। श्री अयोध्याजी में इनका विशिष्ट स्थान है, जो

१. लिंगपुराण पूर्वार्द्ध अ० २६, श्लो० ३५—३६

छावनी कहा जाता है। इसी प्रकार श्रीगोरखनाथ जी के सम्प्रदाय में, योगी सम्प्रदाय में तथा नाथ सम्प्रदायों में धुई रमाने की और भस्म लगाने की क्रिया होती है। उदासी सम्प्रदाय की चार शाखाओं को धुंआं कहते हैं। इनके चार प्रवर्तक हैं—पूजासाहिब शाखा बहादुर पुर, अलमस्तसाहिब पुरी तथा नैनीताल, बाबासाहब आनन्दपुर के पास चरन कौल, गोविन्द साहब शिकारपुर तथा अमृतसर। इनमें सम्पूर्णशरीर पर भस्म धारण करने की प्रक्रिया है। इनके यहाँ जब गुरुजी दीक्षा देते हैं, तब शिष्य को भस्म स्नान कराया जाता है तथा मठ (आश्रम) की गद्दी पर बिठाते समय भी भस्म स्नान कराया जाता है।[१] कर्णाटक में तो इस्लाम मतावलम्बी भी भस्म धारण करते हैं। (टीपूसुल्तान का मकबरा जो कावेरी नदी के तट पर है, वहाँ एक बार मैं गया था। वहाँ का अधीक्षक सब को भस्म बाँट रहा था। (यह नहीं देख पाया कि स्वतः भस्म धारण करता है या नहीं)। आन्ध्र में तिरुपति में त्यागराजनगरम् मुहल्ले में एक छोटा सा मस्जिद है, वहाँ देखा कि कुछ इस्लाममतावलम्बी हल्का सा भस्म लगाकर मस्जिद की परिक्रमा कर रहे थे।

----

१. परशुराम चतुर्वेदी 'उत्तरभारत भी संतपरम्परा' भूमिका पृ० ५३ तथा ४२५

श्री शैव तिलक - १

शिव भक्त वेदों को मान्यता देते हैं। वेदों में यज्ञ की बड़ी महिमा है। प्रथम वेद ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र अग्नि से आरंभ होता है ''अग्निमीडे पुरोहितम्'' अतः अग्नि में हवन करना प्रशस्त माना जाता है। यास्काचार्य ने अग्नि शब्द की निरुक्ति की है—'अग्रे नयति इति अग्निः' अर्थात् जो आगे-आगे ले जाये। इसीलिए अग्नि को उक्त मन्त्र में 'पुरोहितम्' कहा गया है अर्थात् सर्वप्रथम हितकारक। पुराणों में कहा है कि देवता लोग अग्नि में दी हुई आहुति को ग्रहण करते हैं। एक प्रकार से अग्नि उनका मुख है। अग्नि के द्वारा देवताओं को भोजन प्राप्त होता है। अतः अग्नि में प्रदत्त आहुति से बना भस्म पवित्र माना जाता है। दूसरी बात यह है कि यजुर्वेद का अन्तिम चालीसवाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् है और इसका उपान्त्य मन्त्र है—'भस्मान्तं शरीरम्' अर्थात् शरीर का अन्तिम रूप भस्म है। शंकर जी ज्ञान के देवता हैं—'ज्ञानमिच्छेन्महेश्वरात्'। शिव मुक्तिदाता भी है तथा ये ही प्रलय के भी देवता हैं। अतः निर्वाण को याद करने के लिए तथा अपनी चरमस्थिति की स्मृति में भस्म धारण किया जाता है। भस्म किसी भी प्रकार लगाया जा सकता है, पर वेद त्रयी के कारण तीन रेखायें त्रिवेदों की प्रतीक हैं। माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म को शिव कहा है। अतः इसमें श्री शिव जी का स्मरण होना ही चाहिये यतः ''शेरते जगन्ति प्रलयकाले यस्मिन्'' अर्थात् प्रलय काल में जहाँ जगत् सोता है अथवा विश्राम करता है, वह शिवतत्व परब्रह्मरूप सच्चिदानन्द है। अतः यह तिलक

श्री शैव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० ३, ४, एवं ५ देखें।

परब्रह्मात्मक शिवरूप का प्रतीक है। भस्मोपनिषद् में तथा पुराणों में भस्म का महत्त्व वर्णित है। नीलकण्ठशिवाचार्यकृत 'क्रियासार चतुर्थोपदेशः', श्लोक २७९ से ३२० तक (पूरे चतुर्थोपदेश) में भस्म का माहात्म्य वर्णित है।

'देवी भागवत' के एकादश स्कन्द के पन्द्रहवें अध्याय में भस्म माहात्म्य के प्रसंग में एक कथा आयी है—

"एक बार दुर्वासा ऋषि पितृ लोक पहुँचे। पितरों के द्वारा यथोचित सत्कार के पश्चात् महर्षि सुखासीन हुए ही थे कि कहीं से चीखने-चिल्लाने के शब्द सुनाई दिये। महर्षि ने पितरों से पूछा—यह करुण क्रन्दन कैसा है? पितरों ने बताया—यह तो यहाँ रोज की बात है। समीप में ही कुम्भीपाक नरक है, जहाँ मर्त्यलोक के प्राणी अपने पाप कर्मों का दण्ड भोगते हैं। करुण हृदय महर्षि ने समीप जाकर देखना चाहा। महर्षि के वहाँ पहुँचते ही सब शान्त हो गये। वहाँ नियुक्त यमदूतों को समझ में नहीं आया कि यह अचानक परिवर्तन कैसे हो गया? वे सभी यमराज के पास गये। यमराज ने जाकर देखा किन्तु, कुछ समझ नहीं पाये। वे चिन्तित हो उठे, यदि नरक में स्वर्ग का सुख मिलने लगेगा, तब तो हमारी दण्ड व्यवस्था ही बिगड़ जायेगी। वे देवराज इन्द्र के पास गये, वहाँ का दृश्य देखकर इन्द्र भी हैरान थे। इन्द्र ब्रह्मा के पास, ब्रह्मा श्री विष्णु के पास तथा श्री विष्णु सभी देवताओं के साथ कैलास पर भगवान् शिव के पास पहुँचे। सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर भगवान् शिव बोले—अवश्य ही वहाँ कोई शिवभक्त आया होगा। देवताओं ने वहाँ जाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि दुर्वासा के अंग में लगा तनिक भस्म वायु द्वारा उड़कर उस नरक में गिर गया था।

अवाङ्मुखो ददर्शाऽधस्तदा वायुवशाद् हरे।

भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः ।।[१]

भगवान् शिव के दर्शन से वहाँ के सभी नारकीय जीव मुक्त हो गये। भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर कहा—इस स्थान पर एक शिवलिङ्ग की स्थापना की जाय तथा आज से यह स्थान पितृ तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध होगा। तत्पश्चात् यमराज ने दण्ड विधान की पूर्ति के लिए वहाँ से दूर कुम्भीपाक नरक का पुननिर्माण कराया तथा एक मर्यादा स्थापित की गई कि आज से इस मार्ग से कोई शिव भक्त गमन न करे'।

पुनश्च दूर देशे तु कुंभीपाको विनिर्मितः।

निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात्।[२] ''

शैव तिलक यद्यपि भस्म मृत्तिका तथा चन्दन तीनों में से किसी एक से बनाया जा सकता है। किन्तु भस्म से बनाना अत्युत्तम है। प्रातः काल भस्म जल के साथ, मध्याह्न में सुगन्धित द्रव्य के साथ तथा सायं जल के बिना लगाना चाहिये। भस्म लगाने में तर्जनी, अनामिका तथा अंगुष्ठ का प्रयोग करना चाहिये। अनामिका और तर्जनी से बाएं से दाएं तथा पुनः अंगूठे से दाएं से बाएं ले जाना चाहिए। तर्जनी के स्थान पर मध्यमा का प्रयोग भी विहित है। सबसे पहले अंगूठे से ऊद्ध्र्व पुण्ड्र बनाकर उसके ऊपर त्रिपुण्ड्र बनायें। भस्म की लम्बाई दोनों नेत्रों तक की होनी चाहिये।

मध्याह्नात् प्राग् जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम्।

तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुण्ड्रं तु समाचरेत ।।[३]

---

१. दे० भा० ११,।१५, ।६५

२. दे० भा० ११/१५/७६

३. वही ११/११/१९

प्रातः ससलिलं भस्म मध्याह्ने गन्धमिश्रितम्।
सायाह्ने निर्जलं भस्म एवं भस्म विलेपयेत्॥[१]

मध्यमानामिकांगुष्ठैरनुलोमविलोमतः।
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपि भक्तितः॥

अतिस्वल्पमनायुष्यमतिदीर्घं तपः क्षयम्॥
निरन्तरालं यः कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं स नराधमः।[२]

नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुण्ड्रकम्॥[३]

देवी भागवत में भस्मस्नान की भी विधि है।[४]

शैव तिलक – २

इस तिलक की व्याख्या शैवतिलक संख्या एक के समान है। अन्तर इसमें यही है कि त्रिवेद की जगह त्रिदेव की प्रधानता है। इसमें वेद और यज्ञ की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता देते हैं। अतः त्रिदेव की प्रतीक तीन रेखायें देते हैं। इन तीन देवों ब्रह्मा, विष्णु एवं श्री शिव में श्री शिव जी मुख्य देव और प्रथम देव हैं। अतः प्रथम रेखा थोड़ी स्थूल बनायी जाती है। इस प्रकार के भस्म तिलक बनाने के लिए स्कन्द पुराण में लिखा है कि अंगुष्ठ से आदि रेखा तथा तर्जनी से ऊपरवाली तृतीय रेखा बनाये, जिससे आदि रेखा स्थूल बन जाय। स्क० पु० के अनुसार रेखा बनाते समय मध्यमा अंगुलि का स्पर्श निषिद्ध है। यथा—

---

१. दे० भा० ११/९/४३
२. वही ११/१५/२३
३. वही श्लो० ७६
४. वही ११/१४

ललाटेऽगुष्ठरेखा च आदौ भाव्या प्रयत्नतः।
मध्यमां वर्जयित्वा तु अंगुलीयकद्वयेन च।

एवं त्रिरेखासंयुक्तो ललाटे यस्य दृश्यते।
स शैवः शिववज्ज्ञेयो दर्शनात् पापनाशनः।[१]

शैव तिलक - ३

इसकी व्याख्या शैवतिलक संख्या २ के समान है। अन्तर इतना ही है कि शिव तथा विष्णु को एक मान कर दोनों के प्रतीक प्रथम तथा तृतीय रेखा को स्थूल बना दिया जाता है। इस भस्म तिलक को 'हरिहरात्मक तिलक' कहते हैं।

शैव तिलक - ४

इस तिलक की व्याख्या शैव तिलक संख्या १ के समान है। इसमें अन्तर यह है कि इस शैव तिलक के बीच में नेत्र बना है, जो शक्ति तत्त्व पार्वतीजी का प्रतीक है। इसी शक्ति तत्त्व से जगत् का रूप लक्षित है। जगत् लक्षित होता है, दिखायी देता है। अतः शक्ति का प्रतीक नेत्र दिया गया है। यह नेत्र सरल सीधी रेखा में हैं। त्रिपुण्ड्र भस्म से एवं शक्ति का प्रतीक तिलक कुमकुम से बनाया जाता है। अतः शिव एवं शक्ति से सामरस्य का बोधक माना जाता है। जो शिवभक्त शिवरूप की शक्ति से सम्पन्न सामरस्यरूप में उपासना करते हैं, उन्हें यह तिलक प्रिय है।

----

१. स्क० पु० माहे० ख० (के० ख० ५) अ० १३/५९

शैव तिलक - ५

इस तिलक की व्याख्या शैव तिलक संख्या १ के ही समान है तथा यह तिलक शैवतिलक संख्या ४ से भी प्रभावित है। इसमें भी शक्तितत्त्व है पर शिव शक्ति का सामरस्य नहीं दिखाया गया है। इसमें शक्ति रूपा पार्वती का नेत्र दक्षिण की तरफ मुड़ा हुआ है। अर्थात् शक्तितत्त्व ज्ञानोन्मुख है। अत: ज्ञानप्रधान है। जो शिव भक्त शक्तियुक्तशिव के उपासक होते हैं तथा ज्ञान तत्त्व को प्रधानता देते हैं, वे इस प्रकार के तिलक का समादर करते हैं।

शैव तिलक - ६

पूर्वोक्त भस्माकृति की ही व्याख्या इसमें भी है पर इसमें शिव जी का नेत्र पार्वती जी की ओर बायीं तरफ झुका हुआ है। इसमें शक्तितत्व प्रधान है। जो शिवभक्त शिवतत्त्वयुक्त शक्ति के उपासक होते हैं तथा शक्तितत्त्व को प्रधानता देते हैं, वे इस प्रकार के तिलक को सम्मान देते हैं।

शैव तिलक - ७

इस तिलक की व्याख्या शैव तिलक ३, ४, ५ एवं ६ के समान है। अन्तर इतना ही है कि शक्ति-शिव सम्पन्न इस तिलक में शक्ति के दो रूपों का समावेश है—प्रकाशात्मक तथा अप्रकाशात्मक। तात्पर्य यह है कि शक्ति के दो रूप हैं प्रकाश तथा अप्रकाश। प्रकाश रूपा शक्ति के द्वारा जगत् से विराग तथा अप्रकाशरूपा शक्ति से जगत् से अनुराग विवक्षित है। तिलक में बिन्दु का रक्तवर्ण अनुराग को द्योतित करता है तथा बिन्दु के ऊपर का श्वेत वर्ण विराग पक्ष को व्यक्त करता है।

शैव तिलक - ८

इसकी भी व्याख्या तिलक संख्या ५, ६ तथा ७ के समान ही है। इसमें नेत्र प्रतीक में शक्ति के प्रतीक बिन्दु का समावेश है। तन्त्रग्रन्थों में शक्ति के लिए बिन्दु शब्द का प्रयोग किया जाता है। महामाहेश्वर अभिनव गुप्त ने अपने तन्त्रसार ग्रन्थ में 'शक्तिर्बिन्दुः' कहा है। इस प्रकार का निर्देश अन्य तन्त्र ग्रन्थों में भी है। यह शक्ति का प्रतीक बिन्दु अरुण वर्ण का होता है।

शक्तिसम्पन्न शैव तिलक - ९

इस शैवतिलक में रेखात्रय ही है। इसके बीच में शैवतिलक संख्या ४ में वर्णित अर्धनारीश्वर के नेत्र का प्रतीक नहीं है। यह पूर्ण शक्ति तत्व प्रतीक बिन्दु से युक्त है। काशी और इसके आस-पास के प्रदेश में यह तिलक अधिक प्रचलित है। यह बिन्दु वर्तुलाकार है, पर अरुण वर्ण का नहीं है। मलय चन्दन से श्वेत बिन्दु बना देते हैं।

शक्तिसम्पन्न शैव तिलक - १०

यह तिलक पूर्ववर्णित तिलक संख्या ९ के समान ही है। शक्ति तत्व का प्रतीक बिन्दु इस तिलक के मध्य में पूर्णतया अरुण वर्ण का होता है। इसका अधिक प्रचलन मिथिला प्रदेश में तथा नेपाल में है।

शक्तिसम्पन्न शैव तिलक - ११

यह तिलक पूर्ववर्णित सं० १० के समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि शक्ति तत्त्व प्रतीक बिन्दु रेखाओं से बाहर नीचे पूर्ण अरुण वर्ण

का होता है। इसका भी अधिक प्रचलन मिथिला प्रदेश में है तथा दक्षिण भारत में है। आद्य भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य जी के द्वारा संस्थापित सभी मठों में शक्ति के साथ शिव स्वरूप ब्रह्म की अर्चना होती है। प्रधान मुख्य चार मठों—शृंगेरी (काञ्ची), पुरी, द्वारका और बदरीनाथ में क्रमश: शारदा, कामाक्षी, विमला तथा भद्रकाली आदि की आराधना होती है। इसी प्रकार काशी के ऊद्ध्वार्म्नाय तथा रामेश्वरम् आदि में भी शक्ति की आराधना प्रचलित है। शक्ति विशिष्टाद्वैत के अनुयायी कर्णाटक आदि के प्रमुख वीरशैव (जङ्गमशैव, लिङ्गायतशैव) सम्प्रदाय के महात्माओं के यहाँ यह तिलक धारण किया जाता है।[१]

शक्ति सम्पन्न शैव तिलक - १२

इस तिलक में शक्तितत्त्व बिन्दु, श्वेत मलय चन्दन से अंकित है। ऊपर की दो रेखायें शिव तथा विष्णु के प्रतीक है। सबसे ऊपर वाली रेखा ब्रह्मा का प्रतीक है। त्रिदेव के भक्त इसे धारण करते हैं पर पुराणों के अनुसार ब्रह्मा की पूजा वर्जित है। अत: सर्वोपरि ब्रह्मा की रेखा ह्रस्व कर दी जाती है।

शक्ति सम्पन्न शैव तिलक - १३

यह तिलक भी पूर्ववर्णित तिलक सं० १२ के समान है पर इसमें त्रिदेव का रूप ऊपर से है। अर्थात् ऊपर श्री शिव, मध्य में श्री विष्णु और नीचे ब्रह्मा जी है। सबसे नीचे वतुर्लाकार अरुण वर्ण का बिन्दु शक्ति का प्रतीक है।

----

१. यह तिलक स्वरूप श्री चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी ज्ञानपीठाधीश्वर, जंगमवाड़ी, काशी के शिष्य डॉ० श्री ओंकारस्वामी (वाडापुरकर महाराज, महाराष्ट्र) की कृपा से प्राप्त हुआ है।

शक्ति सम्पन्न शैव तिलक - १४

यह तिलक स्वरूप पूर्ववर्णित तिलक सं० १३ के समान ही है। इसमें भी पूर्ववत् ऊपर की रेखा शिव तथा नीचे की दोनों रेखायें विष्णु एवं ब्रह्मा की प्रतीक हैं, इसमें केवल इतना ही अन्तर है कि सबसे ऊपर वर्तुलाकार रेखा शक्तितत्त्व का प्रतीक है। यह मलय चन्दन से निर्मित श्वेत बिन्दु भी होता है। नेपाल में इसका बहुत प्रचलन है। पुरुष तथा महिलायें दोनों धारण करते हैं। विशेषता यह है कि सधवा (सौभाग्यवती) महिलाएँ सिन्दूर से बनाती हैं और विधवा महिलाएँ मलय चन्दन से। पुरुष श्वेत मलय एवं कुंकुम दोनों में किसी एक से बनाते हैं।

शक्ति सम्पन्न शैव तिलक - १५

यह शक्ति सम्पत्र शैव तिलक है पर इसमें शक्ति गौण है। शक्ति है, पर शिव के समक्ष गौण हैं। इस गौणता को लक्षित करने के लिए ऊपर के एक कोने में शक्ति प्रतीक अरुण बिन्दु धारण करते हैं।

शक्ति सम्पन्न शैव तिलक - १६

यह तिलक केवल शिव तत्त्व के साथ शक्ति के समन्वय का बोधक है। नीचे का शक्ति प्रतीक बिन्दु श्वेत तथा अरुण दोनों प्रकार का होता है। यह बिन्दु वर्तुलाकार होता है तथा बीच का स्थान रिक्त होता है। दक्षिण भारत की महिलायें अधिकतर इसको धारण करती हैं। उनमें भी मद्रास प्रदेश में यह तिलक अधिक प्रचलित है। इसमें अर्धनारीश्वर की भावना है।

जीव-ब्रह्म रूप केवल शिव बोधक शैव तिलक - १७

इस तिलक में सेव्य-सेवक भाव से ब्रह्म तथा जीव के बोधनार्थ केवल दो रेखायें देते हैं, वह भी अर्धचन्द्राकार। इसका प्रचलन बहुत कम है। "अद्‌र्धचन्द्रं तथा शैवं शाक्तेयं तिर्यगुच्यते"।[१]

इस तिलक की रचना भस्म या मलय चन्दन से की जाती है।

शक्ति सम्पन्न जीवब्रह्मरूपात्मक शैव तिलक - १८

तिलक संख्या १७ का ही यह भी एक रूप है। अन्तर इतना है कि इसमें बिन्दुरूपात्मक शक्तितत्त्व का भी समावेश है। यह बिन्दु पूर्ण, (बिन्दु के मध्य का स्थान भरा हुआ) तथा अरुण वर्ण का होता है।

शक्ति सम्पन्न जीवब्रह्मरूपात्मक शैव तिलक - १९

यह तिलक संख्या १८ के ही समान है। भेद इतना ही है कि यहाँ बिन्दुरूप शक्ति अरुण वर्ण की न होकर श्वेत वर्ण की है।

----

१. ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यस्मृति प्रकरण २ श्लो० ३२।

ऊद्ध्वपुण्ड्र

ऊद्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं सुपार्श्वं सुमनोहरम्।
मध्ये छिद्रेण संयुक्तं श्रीपदाकृतकं हरेः॥[१]

ऊद्ध्वपुण्ड्रं सदा कार्यं श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
सूतके समनुप्राप्ते वर्जनीयः प्रयत्नतः॥

मृत्तिका चन्दनं भस्म तथा तोयं चतुर्थकम्।
एभिर्द्रव्यैः यथाकालं तिलकं तु समाचरेत्॥[२]

वैष्णव सम्प्रदाय के ५६ द्वारा प्रसिद्ध है। इनमें ३६ द्वारा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के हैं। इन ३६ में भी रामानन्दीय रसिक परम्परा के १५ द्वारपीठ हैं। इन १५ के अतिरिक्त भी ५ और अवान्तर भेद हैं। इस प्रकार रसिक सम्प्रदाय के द्वारपीठ २० हो जाते हैं।

वर्तमान समय में इतिहास के अनुसार वैष्णवों की परम्परा इस प्रकार है। पहला श्री वैष्णव, इन्हें श्री रामानुजीय तथा श्रीविशिष्टाद्वैती भी कहते हैं।

श्री रामानुजाचार्य जी का आविर्भाव काल १०३७ से ११३७ ई० तक माना जाता है। इनकी आविर्भावस्थली भूतपुरी है, जो तमिलनाडु प्रान्त में है। दूसरा माध्व सम्प्रदाय है। इसको ब्रह्म सम्प्रदाय भी कहते हैं। इसके आदि आचार्य वायु देव हैं। वायुदेव से श्री हनुमान जी को, श्री हनुमान् जी से भीम को और भीम से श्री आनन्दतीर्थ जी को इसके सिद्धान्त प्राप्त हुए थे। श्री आनन्दतीर्थ जी मध्वपूर्णबोध तथा पूर्णप्रज्ञ नाम से भी प्रसिद्ध

१. वशिष्ठ स्मृति ३/५०
२. व्याघ्र० स्मृति आचारधर्म वर्णन ४०-४२

हैं। इनका आविर्भाव काल ११९९—१३०३ ई० माना जाता है। इनकी आविर्भावस्थली उडुपी (कर्णाटक) है। तीसरा निम्बार्क सम्प्रदाय है। इसके आद्य आचार्य श्री राधाकृष्ण युगल मूर्ति के प्रतीक श्री हंसनारायणजी हैं। इनके सिद्धान्त श्री हंसनारायण जी से श्री सनत्कुमार जी, सनत्कुमार जी से नारद जी एवं नारद जी से सुदर्शन चक्रावतार श्री निम्बार्क स्वामी को प्राप्त हुए। इनका आविर्भाव काल १४वीं शताब्दी माना जाता है। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनका पूर्वनाम नियमानन्द था। रात्रि में निम्बवृक्ष पर अर्क (सूर्य) का साक्षात् दर्शन करा देने के कारण निम्बार्क नाम से प्रसिद्ध हो गये। चौथा श्री वल्लभ सम्प्रदाय है। इसके आद्य प्रवर्तक श्री विष्णु स्वामीजी हैं। इनकी परम्परा में श्री वल्लभाचार्य जी आते हैं। इनका आविर्भाव काल १५१६-१५८६ है। इनके जीवन की अधिकांश घटनायें काशी, चुनार, (चरणाद्रि), अरैल, प्रयाग तथा वृन्दावन से सम्बद्ध हैं। इनके सिद्धान्त से प्रभावित होकर कुछ अवान्तर भेद के साथ गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना हुई। पाँचवा श्री रामानन्द सम्प्रदाय है, इसके आद्य प्रवर्तक श्री सीताराम जी हैं। श्री सीताराम जी से श्री हनुमान जी और श्री हनुमान जी से परम्परया श्री रामानन्द स्वामी जी को दीक्षा प्राप्त हुयी थी। इनका आविर्भाव काल १३०० वि० सं० माना गया है। यह रामानुजीय का शाखा विशेष है या स्वतन्त्र है? इस पर वैष्णवाचार्यों में मतभेद है। श्री रामानन्द स्वामी जी का स्थान वाराणसी में पंचगंगा घाट के समीप था। इनकी मढ़ी अभी भी है। इनके श्री कबीर आदि १२ शिष्य प्रसिद्ध हुए थे। इसके लिए डा० श्री वंशीधर त्रिपाठी जी के ग्रन्थ 'साधुज् ऑफ इण्डिया' तथा श्री भगवती प्रसाद सिंह के ग्रन्थ 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' (पृष्ठ ३३४) से बड़ी सहायता ली गयी है। आगे के पृष्ठों पर इन सम्प्रदायों के तिलकों के स्वरूप पर विचार किया जायेगा।

श्री रामानुजीय वैष्णव तिलक - १

(तेंगलै शाखा)

वैष्णवों के मुख्य चार सम्प्रदाय हैं, जिनका निर्देश इस प्रकार है।

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यंचतुर्मुखः।

श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः ।।[१]

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रन्थ 'वैष्णव धर्म' में श्री दुर्गाशंकर शास्त्रिकृत 'वैष्णव धर्म का इतिहास' के पृष्ठ २३५ से एक श्लोक उद्घृत किया है—

आसन् सिद्धान्तकर्तारश्चत्वारो वैष्णवा द्विजाः।

यैरयं पृथिवीमध्ये भक्तिमार्गो हृदि कृतः ॥

विष्णुस्वामी प्रथमतो निम्बादित्यो द्वितीयकः।

मध्वाचार्यस्तुतीयस्तु तुर्यो रामानुजः स्मृतः ॥

इसी प्रकार श्री गोवर्धन शर्मा जी ने अपने ग्रन्थ 'सन्तसिद्धान्तमार्तण्ड' पृ० १०-११ में पद्म पु० के श्लोक उद्धृत किये हैं।[२]

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ॥

---

१. पद्मपुराण।

२. विवेक प्रकाशन इला०, १९५३ ई० सेठ नारायण दास तथा जेठानन्द आसनमल ट्रस्ट, २३६ मालवा देवी रोड, बम्बई में प्रकाशित।

श्री रामानुजीय वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० ६ देखें।

श्रीब्रह्मरुद्रसनकवैष्णवाः क्षितिपावनाः।

चत्वारस्ते कलौ भाव्याः सम्प्रदायप्रवर्तकाः॥

रामानुजानां सरणिं रमातो गौरीपतेर्विष्णुमतानुगानाम्

निम्बार्कगानां सनकादितश्च माध्वानुगानां परमेष्ठितश्च॥

संख्या १ में अंकित तिलक श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के तेंगलैशाखा का है। श्री रामानुज वैष्णवों की दो शाखायें हैं, तेंगलै तथा बड़गलै। इनमें तेंगलै प्राचीन है तथा बड़गलै कुछ नवीन है। बड़गलै के प्रवर्तक श्री वेंकट वेदान्तदेशिक हैं। तेंगलै तिलक के नीचे आसन दिया जाता है और बड़गलै तिलक में आसन नहीं दिया जाता।

वैष्णव भक्त सगुणोपासक हैं। यद्यपि सगुणोपासना का वर्णन ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य तथा इससे पूर्व ग्रन्थों में भी प्राप्त है, किन्तु अद्यतन भक्ति इतिहास ग्रन्थों में इसके अधिक प्रचार-प्रसार के लिए प्रथम श्रेय श्री रामानुजाचार्य जी को दिया जाता है। वैष्णव सिद्धान्त में जीव और ब्रह्म में शरीर और शरीरीभाव सम्बन्ध है। जीव नित्य है और उपासना के द्वारा भगवान् का अनुग्रह पाकर भक्त वैकुण्ठ, गोलोक और साकेत लोक आदि उर्ध्व लोगों में जाकर भगवान् के सालोक्य, सान्निध्य, सारुप्य तथा सार्ष्टि आदि रूप मोक्ष पाता है। इसलिए भगवत्प्रीत्यर्थ आराधना अथवा उपासना के लिए भगवान् के चरणारविन्द को रेखारूप में ललाट पर धारण किया जाता है। ये दो रेखायें भगवान् के दोनों चरणों के प्रतीक हैं। मध्य में कुंकुम से बनायी हुयी अरुणरेखा श्री लक्ष्मी का प्रतीक है। ऊर्ध्वलोक, वैकुण्ठ आदि की प्राप्ति में साधन होने से रेखायें ऊर्ध्वमुख बनायी जाती हैं। पद्मपुराण एवं विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदि में लिखा है कि ये रेखायें कमलदल के समान या वेणु (बांस) के दल के समान ऊपर थोड़ी पतली बननी चाहिये। इस ग्रन्थ की भूमिका में एतदर्थ पुराणवचन

उद्धृत किये गये हैं, पर लोकाचार में देखा जाता है कि कुछ भक्तगण ऊपर कुछ पतली रेखा बनाते हैं और कुछ भक्त गण नीचे से ऊपर तक एक समान ही रेखा बनाते हैं। भगवान् के दोनों चरण चिह्नों के नीचे आसन दिया जाता है। यह आसन श्री हनुमान् जी या श्री गरुड जी का प्रतीक है। कुछ विद्वान् ऐसी भी व्याख्या करते हैं कि दोनों ऊर्ध्वरेखायें ज्ञान तथा विराग हैं एवं बीच की रेखा रसात्मिका भक्ति है तथा वाहन के रूप में श्री हनुमान जी या श्री गरुड़ जी हैं। कुछ विद्वान् कहते हैं कि ऊर्ध्व रेखायें ब्रह्म तथा जीव की बोधिका हैं तथा मध्य की रेखा या बिन्दु माया है। श्री रामानन्दीय रसिक वैष्णों के तिलक में इन तीन रेखाओं और बिन्दु के अतिरिक्त चन्द्रिका, मुद्रिका, अर्धचन्द्र तथा युगल नाम भी अंकित किये जाते हैं। आगे श्री रामानन्दीय तिलकों में इन पर विचार किया जायेगा। इस तिलक में भगवान् की चरणरेणु मृत्तिका से दोनों चरणचिह्न तथा आसन बनाते हैं। मध्य में श्री लक्ष्मी का प्रतीक बिन्दु कुंकुम से बनाते हैं। यह तिलक तेंगलै सम्प्रदाय का है। अतः नीचे आसन दिया गया है। आगे का वैष्णव तिलक सं० २ बड़गलै सम्प्रदाय का है जिसमें आसन नहीं दिया गया है। इसके लिए तिरुपति आदि दाक्षिणात्य क्षेत्रों में दो कथाएं प्रचलित हैं— दो वैष्णव भाई सन्ध्या कर रहे थे। इसी बीच भगवान् की सवारी आ गई। मना करने पर भी एक भाई सन्ध्योपासना छोड़कर प्रभु के दर्शनार्थ चले गये। उनका कहना था कि जिसके लिए सन्ध्या कर रहे हैं, वही आ गया तो सन्ध्या का क्या प्रयोजन है? दोनों भाई अपने गुरुजी के समीप गये और कहा कि क्या उचित है? गुरु जी ने सन्ध्या परित्याग करने वाले का पक्ष लिया और सन्ध्या करने वाले को दण्ड दिया। दण्ड स्वरूप तिलक के नीचे का आसन छीन लिया गया। अर्थात् आसन रहित तिलक बनाने का निर्देश दिया गया। एक परम्परा के अनुसार यह भी प्रसिद्धि है कि सन्ध्योपासना में बैठे रहने वाले

शिष्य को अत्यधिक अनुताप हुआ जिसके कारण अश्रुप्रवाह से आसन धुल गया। तब से आसन रहित तिलक को बड़गलै कहा गया। दूसरी कथा के अनुसार श्री रामानुज वैष्णव सम्प्रदाय में भगवान् की अर्चना में तमिल वेद, जो द्रविड़ भाषा में लिखा है, उसको प्रधानता दी जाती थी। वैष्णवाचार्य श्री वेदान्त देशिक ने ऋग्वेदादि मन्त्रों को प्रधानता दी। तब से दो शाखायें हो गयीं। तमिलवेद वाली शाखा तैंगलै का अर्थ दक्षिण वीथि और बड़गलै का अर्थ उत्तर वीथि है। पहले की शाखा तेंगलै और बाद की शाखा बड़गलै कहलायी।[१]

श्री रामानुजीय वैष्णव तिलक - २
(बड़गलै शाखा)

यह तिलक श्री रामानुज सम्प्रदाय के श्रीवैष्णवों की बड़गलै शाखा का है। इस की व्याख्या श्री रामानुज श्रीवैष्णव तिलक संख्या १ के समान है। इसमें दोनों प्रभुचरणों को श्वेतरेखा से बनाते हैं तथा बीच में कुंकुम से श्री लक्ष्मी जी को प्रतीक रूप से अंकित करते हैं। नीचे आसन नहीं देते हैं। आसन न देने का कारण पीछे की तिलक सं० १ में वर्णित है।

श्री रामानुजीय वैष्णव तिलक - ३
(पाञ्चरात्र सम्प्रदाय)

श्री रामानुजीय वैष्णवों में तेंगलै एवं बड़गलै के अतिरिक्त दो भेद और भी हैं—वैखानस तथा पांचरात्र। इन दोनों सम्प्रदायों की प्राचीनता एवं महत्व में विवाद है। वैखानस सम्प्रदाय के ग्रन्थों में लगभग ९

१. उपर्युक्त तिलक का विवरण सम्प्रदायनिष्ठ पण्डित प्रवर श्री रामनारायणाचार्य वरिष्ठ प्रवाचक, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद की कृपा से प्राप्त।

संहितायें उपलब्ध हैं। पांचरात्र सम्प्रदाय की छोटी-बड़ी संहितायें लगभग ६० के करीब या इससे भी अधिक प्राप्त हैं। दक्षिणभारत में इनके अनुयायी बहुत हैं। इन दोनों की उपासना विधि में बहुत बड़ा अन्तर है पर तिलक में कोई खास अन्तर नहीं है। दोनों चरणों के अग्रभाग कुछ झुके रहते हैं और बीच की रेखा कभी-कभी शुक्ल भी रखते हैं। सम्मान के साथ इस तिलक को पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का तिलक मानते हैं।

श्री रामानुजीय वैष्णव तिलक - ४
(वैखानस सम्प्रदाय)

इस तिलक का विवरण रामानुजीय पाञ्चरात्र वैष्णव तिलक संख्या ३ के समान है। तिरुपति के श्री वेंकटेश मन्दिर में वैखानस विधि से अर्चना होती है।

श्री माध्व वैष्णव तिलक - १ (क)

यह तिलक मध्वसम्प्रदाय का है। ब्रह्मसम्प्रदाय को ही मध्वसम्प्रदाय भी कहते हैं। इसके प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य जी हैं। जो आनन्दतीर्थ तथा पूर्णप्रज्ञ नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनके आदि गुरू वायुदेवता, श्री हनुमान जी तथा श्री भीम देव है। श्री मध्वाचार्य जी का आविर्भाव काल ११९३ है। इनकी तपोभूमि उडुपी (कर्णाटक) है। मुख्यतः ये द्वैतवादी हैं। और इनके आराध्य श्री लक्ष्मीनारायणजी हैं। वस्तुतः इस सम्प्रदाय में श्री लक्ष्मीनारायण जी, श्री सीताराम जी एवं श्री राधाकृष्ण जी, तीनों ही आराध्य हैं। कर्णाटक के उडुपी में श्री राधाकृष्णजी तथा कर्णाटक के ही होशपे में श्री सीताराम जी मुख्यतया आराध्य हैं। श्री लक्ष्मीनारायण तो सर्वत्र इनके आराध्य हैं। श्री हनुमान् जी दास्यभाव में इन दीनों मन्दिरों में सम्मुख स्थापित रहते हैं। आदिगुरुओं में श्री हनुमान् जी आराध्य हैं।

इस तिलक में ऊर्ध्वमुख दोनों रेखायें शुक्ल या पीत वर्ण की होती हैं और ऊपर की ओर से थोड़ी झुकी होती हैं। मध्य की रेखा अपेक्षाकृत पतली श्वेत या पीत वर्ण की होती है। यह सुगन्धित पदार्थों से बने द्रव्य से बनायी जाती है। भोजन के समय तिलक नहीं रहता है। भोजन से पूर्व केवल कृष्ण वर्ण की एक ऊर्ध्वरेखा और रेखा के नीचे भृकुटी पर एक बिन्दु अंकित करते हैं। इसके उपादान के लिए द्रव्य केला का पत्ता और हरिद्रा जला कर कृष्ण वर्ण का चूर्ण बनाते हैं। इस सम्प्रदाय में तिलक के साथ पंचमुद्राओं-शंख, चक्र गदा, पद्म तथा नारायण इन मुद्राओं का अंकन अत्यावश्यक है। शरीर पर ललाट, वक्ष, बाहुमूल, हृदय आदि द्वादश स्थानों पर गोपीचन्दन से तिलक तथा पञ्चमुद्रायें अंकित की जाती

श्री माध्व वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० ७ देखें।

हैं। यदि किसी कारणवश शंख आदि मुद्रायें न बन सकीं तो केवल नारायणमुद्रा से भी काम चल सकता है। पर नारायण मुद्रा अवश्य होनी चाहिये।[१]

माध्व वैष्णव तिलक - १ (ख)

यह तिलक माध्व वैष्णव तिलक १ का ही एक भेद है। इस तिलक में दोनों ऊर्ध्व रेखायें सीधी होती हैं तथा इसमें शंख, चक्र आदि पंचमुद्राओं के स्थान को इंगित किया गया है। शेष सभी विवरण पूर्ववत् हैं।

माध्व वैष्णव तिलक - २

इस तिलक का विवरण माध्ववैष्णव तिलक सं० १ के समान है। पूर्व में लिखा गया है कि इनके श्री सीताराम जी भी उपास्य है। यह तिलक श्री सीताराम जी के उपासक मध्व महात्माओं का है। ऊर्ध्व की दोनों रेखायें केवल श्वेत अथवा केवल पीत वर्ण की होती हैं। डा० श्री वंशीधर त्रिपाठी जी ने अपने ग्रन्थ 'साधुज् आफ इण्डिया' पृ० ३२, में इसका उल्लेख किया है।

उच्च और दीर्घ आयत तिलक का माहात्म्य वशिष्ठस्मृति में इस प्रकार लिखा है—

आचम्य धारयेदूद्ध्वं पुण्ड्रं सम्यग् विधानतः।
नासिक्यमूलमारभ्य केशान्तं सुप्रकल्पयेत्॥

---

१. श्री भाऊ आचार्य तोणपे, मध्वाश्रम हनुमानघाट, श्री गोपालाचार्य तोणपे मार्ग, वाराणसी की कृपा से प्राप्त।

त्र्यंगुलस्तस्य विस्तारश्चतुरंगुलसमायतः।
सान्तरालं द्विजः कुर्यात् पार्श्वावंगुलमात्रकम्॥

धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि ललाटे चोक्तपूर्वकम्।
ऊद्‌र्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु लक्ष्मीस्थानं प्रकल्पयेत्॥

हारिद्रेण च चूर्णेन कुंकुमेन सुगन्धिना॥[१]

माध्व वैष्णव तिलक - ३

यह तिलक माध्व वैष्णव सम्प्रदाय का माना जाता है किन्तु इसका विवरण उपलब्ध नहीं है।

----

१. व० स्मृ० अ० ६ श्लो० ४८-५१

निम्बार्क वैष्णव तिलक - १

इस तिलक के प्रवर्तक श्री निम्बार्काचार्य जी हैं। इनका आविर्भाव काल चौदहवीं शताब्दी है। पूर्व में इस सम्प्रदाय का विवरण दिया गया। है। सम्प्रदाय वाले अनुसन्धान में ५७१ ई० इनका आविर्भाव काल मानते हैं। ये श्री राधाकृष्ण युगल मूर्ति के उपासक थे। इनके आदिगुरु श्री हंसनारायण जी को श्री राधाकृष्ण युगल का अवतार माना जाता है। इनका दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत या भेदाभेदवाद है। इस तिलक में दोनों ऊर्ध्वरेखायें तथा बीच का बिन्दु गोपीचन्दन से बनाया जाता है तथा भृकुटी से नीचे नासिका के आरंभ भाग पर से तिलक बनाया जाता है। रेखायें तथा बिन्दु बहुत हल्की, पतली, सुडौल एवं सुन्दर बनायी जाती हैं। बिन्दु नासिका के ऊपर ललाट के अधोभाग पर होता है।

श्री आचार्य जी सुदर्शन चक्र के अवतार हैं। इसलिए भी मध्य बिन्दु सुदर्शनाकार में वर्तुल बनाया जाता है। मध्य में बिन्दु बनाने के लिए श्यामाचल पर्वत के श्यामवर्ण पाषाणखण्ड के चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। ऐसा भी कहते हैं कि तिलक श्री हरिमन्दिर है और श्याम बिन्दु श्री हरिस्वरूप श्यामश्री है। मध्य में श्यामश्री तथा पीतश्री दोनों का विधान है। श्यामश्री संन्यासी के लिए और पीतश्री गृहस्थों के लिए। पीतश्री केशरयुक्त गोपीचन्दन से या केवल गोपीचन्दन से बनायी जाती हैं।[१]

----

१. डा० स्वामी श्री वृन्दावन बिहारीदास (श्री विश्वनाथ चक्रवती पूर्वनाम), कठियाबाबा आश्रम, शिवाला, वाराणसी से प्राप्त।

श्री निम्बार्क वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० ८ देखें।

निम्बार्क वैष्णव तिलक संख्या - २

यह तिलक निम्बार्क वैष्णव तिलक संख्या १ के ही समान है। अन्तर इतना ही है कि बिन्दु ललाट के आदि भाग में न होकर मध्यभाग में है। मध्य बिन्दु के लिए इससे पूर्व के तिलक में विचार किया गया है। यह कृष्णश्री तिलक निम्बार्क सम्प्रदाय के संन्यासी महात्माओं का है।

इस सम्प्रदाय के कुछ गृहस्थ महानुभाव के अनुसार दोनों ऊर्ध्व रेखायें केवल गोपीचन्दन की न होकर केशर युक्त मलयचन्दन अथवा केशर युक्त गोपीचन्दन से बनायी जाती हैं।[१]

निम्बार्क वैष्णव तिलक संख्या - ३

यह तिलक निम्बार्क वैष्णव तिलक का ही एक भेद है। इसमें विशेषता यह है कि इसकी गुरुपरम्परा में आद्य आचार्य श्री राधाकृष्ण युगलमूर्ति, श्री हंसनारायणजी, श्री सनत्कुमारजी, श्री नारदजी एवं श्री निम्बार्क जी ये पाँच हुए और ये पाँचों परम्परया श्री चक्रसुदर्शन से सम्बद्ध है। अतः इन पाँचों के प्रतीक में ५ बिन्दु बनायी जाती हैं।

डा० श्री वृन्दावनविहारी दास जी महाराज, काठिया बाबा आश्रम शिवाला, वाराणसी के अनुसार निम्बार्क सम्प्रदाय में मुख्य ७ भेद हैं। हरिदासी, सखी, निर्वाणी इत्यादि। उनमें हरिदासी सम्प्रदाय श्री राधाचरणदास जी का है।

----

१. वाराणसी के भदैनी मुहल्ले के मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्द त्रिपाठी जी की कृपा से इस तिलक का विवरण प्राप्त हुआ है। ये इस सम्प्रदाय के विशिष्ट चिन्तक एवं विद्वान हैं।

गौडीय तिलक - १

इस सम्प्रदाय के प्रर्वतक श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। इनका दार्शनिक सिद्धान्त मध्व सम्प्रदाय के द्वैतवाद से मिलता है। पर मध्व सम्प्रदाय के उपास्य श्री लक्ष्मीनारायण जी, श्री सीताराम जी तथा श्री राधाकृष्ण जी हैं। किन्तु श्री महाप्रभु के उपास्य एकमात्र श्री राधाकृष्ण जी ही हैं। इनका आविर्भाव काल १४८५ ई० है। ये श्री वल्लभाचार्यजी के समसामयिक तथा गौडीय वैष्णव मत के प्रतिष्ठापक हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु इतिहास की दृष्टि से भी मध्वाचार्य के द्वैतवाद से प्रभावित थे, परन्तु सिद्धान्तदृष्ट्या द्वैतवाद से नितान्त भिन्न अचिन्त्य भेदाभेदवाद के प्रतिष्ठापक हैं। इनके उपास्य श्री कृष्ण जी हैं। अतः उनके श्री चरणों को ललाट पर अंकित करते हैं। ऊर्ध्वमुख दो रेखायें पतली-पतली बनायी जाती हैं। मध्य में श्री या बिन्दु कुछ भी नहीं रहता। नासिका के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक पतली और नुकीली रेखा बनायी जाती हैं। जिसे बंशी का प्रतीक मानते हैं। ये रेखायें गोपीचन्दन या मलय चन्दन से शुक्लवर्ण की बनाई जाती हैं। पद्मपुराण में लिखा है—'वेणुपत्राकारम्'०। अतः वेणु (बांस) पत्र के समान नुकीला बनाया जाता है।

गौडीय तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० ९ देखें।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १

यह श्रीसम्प्रदाय का आसन सहित तिलक अयोध्या में जानकी धाम आदि स्थानों में मान्य है। वैष्णवों में सबसे अधिक व्यापक श्री रामानन्द सम्प्रदाय है। इसको श्री सम्प्रदाय तथा रामानन्द सम्प्रदाय भी कहते हैं। रामानुजीय वैष्णवों तथा रामानन्दीय वैष्णवों के सिद्धान्तों एवं आचार में बहुत अधिक समता है, जिसमें अनेक भ्रान्तियाँ तथा वाद-विवाद भी उत्पन्न हुए हैं। इनके आदि आचार्य श्री जी अथवा श्री सीताराम जी हैं। इनके आराध्य अथवा उपास्य श्रीं सीताराम जी हैं। इनके तिलक में भी उपास्य के दोनों चरणकमलों के प्रतीक में दो शुक्ल या पीत रज (मृत्तिका) निर्मित दो रेखायें और मध्य में श्री सीता जी का प्रतीक कुंकुम निर्मित सीधी तथा ऊपर की तरफ पतली अरुण वर्ण की रेखा का निर्माण किया जाता है। जैसा पद्मपुराण तथा श्री रामानन्दाचार्य विरचित वैष्णव मताब्जभास्कर में वर्णित है। श्री रामानन्दाचार्य जी बड़े विलक्षण प्रतिभावाले युग निर्माता संत थे। वे परमभक्त, परमयोगी, परमराजनीतिज्ञ, परमसामाजिक तथा परमसंत थे। उन्होंने सभी वैदिक सम्प्रदायों का समन्वय किया। उन्हीं का अनुसरण इनके शिष्यों ने तथा परवर्ती आचार्यों ने भी किया। इसमें प्रथम मुख्य चार तिलक श्री, बेंदी (बिन्दु) चतुर्भुजीय तथा लश्करी प्रसिद्ध है। बाद में और भी अवान्तर भेद हो गये।

भक्ति सम्प्रदाय में वर्णित श्री रामानुजीय, माध्व, निम्बार्कीय एवं वाल्लभ तिलकों के समान ही इसकी दार्शनिक व्याख्या है। इस तिलक में दोनों श्वेत ऊर्ध्व रेखायें प्रभु श्री रामचन्द्र जी के दोनों श्री चरणों के प्रतीक हैं तथा मध्य में श्री सीता जी का प्रतीक अरुण रेखा है। नीचे

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० १०, ११ एवं १२ देखें।

ऐश्वर्यसूचक आसन दिया गया है। यह तिलक, स्वामी श्री रामानन्दाचार्य जी के द्वारा अथवा इनके पूर्वतन आचार्य जी के द्वारा प्रवर्तित है।

श्री सम्प्रदाय के तिलक में आसन देने का तथा आसन न देने का दोनों प्रकार के विधान हैं। आसन देने वालों में श्री अयोध्या जी के जानकी घाट आदि स्थान प्रसिद्ध हैं।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - २

रामानन्दीय वैष्णव तिलक के अन्तर्गत यह श्री सम्प्रदाय का आसन रहित तिलक है।

पीछे कहा गया है श्री सम्प्रदाय में आसन सहित एवं आसन रहित दोनों प्रकार के तिलक हैं। यह आसन रहित श्री सम्प्रदाय का तिलक डाकोर आदि के मठों में मान्य है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ३

यह तिलक रैवासा गद्दी के आचार्य श्री अग्रदास जी महाराज के द्वारा प्रवर्तित है। इसमें आसन नहीं दिया गया है। ऊर्ध्वमुख दोनों रेखायें श्वेत वर्ण की है। मध्य की रेखा अरुण वर्ण तथा दोनों ऊर्ध्व रेखाओं के पार्श्व में पीतवर्ण की चन्द्रिका है। यह चन्द्रिका श्री सीतामाता जी के सौभाग्य सूचक प्रधान अलंकार का प्रतीक है।

श्री रामानन्द स्वामी जी के १२ शिष्यों में रसिक सम्प्रदाय की गद्दियों की स्थापना का मुख्य श्रेय श्री अनन्तानन्द जी, श्री सुरसुरानन्दजी आदि को है। पहले श्री कृष्णदास पयआहारी, श्री कील्हदास, श्री अग्रदास तथा श्री बालानन्द जी की साधना गद्दियाँ गलता, रैवासा (जयपुर), में प्रधान-द्वारपीठ में स्थापित हुईं और धीरे-धीरे भारत में फैल गयीं। वैष्णवों के ५६ द्वारों में ३६ केवल श्री रामानन्दीय हैं। इन ३६ में भी श्री अग्रदास जी के १५ द्वारपीठ हैं। इनके अतिरिक्त रसिक परम्परा के बीस (२०)

द्वारपीठ रसिकों के हैं। रसिकों का प्रधानपीठ रैवासा (शेखावाटी), जयपुर माना जाता है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ४

यह तिलक लश्करी सम्प्रदाय का है। इसके प्रवर्तक श्री बालानन्दजी महाराज हैं। इसमें तीनों रेखायें श्वेत वर्ण की हैं तथा नीचे आसन दिया गया है। कहा जाता है कि कुछ लोग वैष्णवों से कलह करते थे और मार भी देते थे। इसको रोकने के लिए श्री बालानन्द जी ने जबर्दस्त मुकाबला किया। इसके लिए महात्माओं को सैन्य की शिक्षा भी दी गयी। सुना जाता है ये जयपुर राजघराने के थे। कभी कुछ विरोधियों ने वैष्णवों पर अचानक धावा बोल दिया, उस समय श्री बालानन्दजी महाराज ने शीघ्रता में तीनों रेखायें श्वेत वर्ण की बनाकर मुकाबला करने के लिए उतर गये थे। तभी से यह तिलक प्रवर्तित हुआ और लश्करी अर्थात् सैनकीय कहलाने लगा। तभी से यह पद्य भी प्रचलित है—"स्वामी बालानन्द कृपाला। राखेऊ तिलक लागे जस भाला।" इसी परम्परा में श्री अयोध्या जी का विघाकुण्ड स्थान तथा बाबा श्री रघुनाथ जी की छावनी आदि है। इसका विस्तृतविवरण 'बृहद् उपासना रहस्य' पृष्ठ १४७ में प्राप्त होता है।[१]

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ५
(बिन्दु सम्प्रदाय)

यह बिन्दुकाचार्य जी के द्वारा प्रवर्तित तिलक है। इसके आदि प्रवर्तक श्री अयोध्या जी के बड़ा स्थान के आचार्य श्री रामप्रसाद जी महाराज हैं।

---

१. श्री रामानन्दाचार्य श्री रामेश्वरानन्द जी, आचार्यपीठ कोशलेन्द्र मठ, अहमदाबाद की कृपा से प्राप्त।

ये अयोध्याजी के बाबा श्री मणिराम छावनी के संस्थापक की चौथी पीढ़ी में हुए थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि भावातिरेक में इनकी तन्मयता से प्रसन्न माता जगदम्बा श्री सीताजी ने स्वयं अपने कर कमलों से बिन्दी प्रदान की थी, जिसे महाराजश्री ने प्रसाद रूप मान कर शिर पर धारण कर लिया। तिलक में बिन्दुरूप में बिन्दी का प्रतीक बनाया जाता है। बिन्दु शब्द के घर्षित रूप में बिन्दी तथा बेंदी शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। इसमें दोनों ऊद्धर्व रेखायें तथा मध्य का बिन्दु तीनों ही श्वेत होते हैं। श्री अयोध्या जी के श्री मणिराम छावनी आदि मठ इसी से सम्बद्ध हैं। इसके प्रवर्तक आचार्यजी को श्री बिन्दुकाचार्य या बिन्दुगाद्याचार्य कहा जाता है। ये माधुर्यभाव के उपासक थे।

इस बिन्दु (बेंदी) सम्प्रदाय के अन्तर्गत किन्हीं सम्प्रदायों में मध्य का बिन्दु पीतवर्ण भी होता है। विशेषतः पीतवर्ण के लिए गोपीचन्दन का प्रयोग किया जाता है। इस मध्यबिन्दु का आकार छोटा तथा बड़ा भी होता है। बड़ा आकार अठन्नी के बराबर होता है और छोटा आकार चवन्नी के बराबर होता है। देवरिया जिले के पवहारी बाबा के स्थान का तिलक अठन्निया कहा जाता है। श्री अयोध्या जी के सभी बेंदी सम्प्रदाय के स्थान चवन्निया कहे जाते हैं। मैहर के श्री रामसखे जी महाराज का भी चवन्निया बेंदी तिलक है पर बिन्दु पीतवर्ण का होता है। ये माधुर्य भाव के उपासक हैं।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक – ६

यह तिलक रसिकाचार्य श्री रामचरण दास जी के द्वारा प्रवर्तित है। इसमें दोनों ऊर्ध्वरेखायें पीतवर्ण की और बीच में श्री सीता जी के सौभाग्य चिह्न का प्रतीक अरुण वर्ण का वर्तुलाकार बिन्दु और उसके ऊपर माता श्री सीता जी की चन्द्रिका की छबि विराजमान है। इसमें आसन नहीं दिया जाता। कहते हैं पहले इनका रैवासा गद्दी से सम्बन्ध था। बाद में

बिन्दु (बेंदी) सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर रैवासा गद्दी की भक्ति में तिलक का आसन रैवासा गद्दी के लिए भेंट कर दी। रसिकाचार्य होने से मांगलिक पीत वर्ण तथा अरुण वर्ण का वरण किया था। ये श्री अयोध्या जी के बड़ा स्थान के आचार्य श्री रामप्रसाद जी के शिष्य थे। श्री भगवती सिंह जी ने अपने ग्रन्थ 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' पृ० ३३०-३३६ में लिखा है कि रैवासा गद्दी (शेखावाटी, जयपुर) के आचार्य के कहने पर श्री रामचरण दास जी द्वारा तिलक में नीचे का सिंहासन हटाने पर ही श्रृंगारी उपासना के ग्रन्थ 'अग्रसागर' पढ़ने के अधिकारी बन सके थे।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ७

यह तिलक रसिक सम्प्रदाय के संत श्री जीवाराम युगलप्रिया जी का है। तिलक में दोनों ऊर्ध्व रेखायें पीत वर्ण की, मध्य में अरुण वर्ण की बेंदी, बेंदी के ऊपर अरुण वर्ण की ही चन्द्रिका होती है तथा भृकुटी के ऊपर दोनों पार्श्व में मुद्रिका बनाकर, उसके ऊपर सीताराम-सीताराम अंकित किया जाता है। इसमें आसन नहीं दिया जाता है। इनकी प्रधान गद्दी चिरान, जिला छपरा (बिहार) में है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ८

यह तिलक महात्मा जनकराजकिशोरीशरण रसिक जी के द्वारा प्रवर्तित है। इसमें दोनों ऊर्ध्व रेखायें श्वेत वर्ण की और बीच में श्री जी का अरुण वर्ण का अर्धचन्द्राकार बिन्दु और उसके ऊपर माता श्री सीता जी की पीत चन्द्रिका की छवि है। इसमें आसन नहीं दिया जाता है। इनके श्रृंगारी गुरु श्री रामचरणदास जी तथा वैष्णव दीक्षा गुरु श्री राघव दास जी महाराज हैं।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ९

इस तिलक के प्रवर्तक संत श्री रूपकला जी महाराज, नयाघाट, अयोध्या है। यह रसिक सम्प्रदाय का एक तिलक है। इसके प्रवर्तक श्री रूपकलाजी महाराज रसिक सम्प्रदाय के थे। इसमें ऊर्ध्व दोनों रेखायें पीत वर्ण की, मध्य में श्री जी का अरुण बिन्दु, उसके ऊपर बिल्वपत्राकार अरुण सीधी रेखा, उसके ऊपर दाहिनी ओर चन्द्रिका तथा उर्ध्वरेखा के दोनों पार्श्व में श्री सीता जी की रामनाम अंकित मुद्रिका और नीचे आसन भी रहता है। इस तिलक में रसिक आचार्यों की मान्यता प्राप्त सभी विशेषतायें हैं।

महाराज जी का गृहस्थाश्रम का नाम श्री भगवान् दास, दीक्षा प्राप्त नाम श्री सीतारामशरण तथा रसिक सम्प्रदाय प्राप्त नाम श्री रूपकला जी था। अयोध्या जी में सरयूतट, नयाघाट पर इनका स्थान है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १०

इस तिलक के प्रवर्तक संत श्री रूपसरसजी महाराज, जयपुर के थे। इसमें ऊद्धर्व दोनों रेखायें शुक्ल वर्ण की, मध्य में नीचे लाल अद्र्धचन्द्र, उसके ऊपर श्री जी का प्रतीक अरुण वर्ण की एक बिन्दु और उसके ऊपर बिल्व पत्राकार रेखा होती है। इसमें नीचे आसन दिया जाता है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - ११

इस तिलक के प्रवर्तक श्री निध्वाचार्य श्री रामसखे जी हैं। यह बिन्दु (बेंदी) सम्प्रदाय का तिलक है। इसमें दोनों ऊर्ध्व रेखायें पीत वर्ण की, मध्य में पीत बिन्दु तथा नीचे आसन दिया जाता है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १२

यह तिलक संत श्री शीलमणि जी के द्वारा प्रवर्तित है। इसमें दोनों ऊर्ध्व पुण्ड्र रेखायें शुक्ल वर्ण की और बीच में श्री सीता जी का प्रतीक अरुण वर्ण की बिल्वपत्राकार पतली रेखा होती है।

ये सखाभाव के उपासक थे तथा गढ़वाल, उत्तरकाशी के रहने वाले थे। बाद में श्री अयोध्या जी में आकर कनक भवन के उत्तर फाटक के पास लालसाहेब की गद्दी नामक स्थान बना कर रहने लगे थे।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १३

इस तिलक के प्रवर्तक महात्मा श्री कामदेवमणि जी हैं। इसमें दोनों ऊर्ध्व पुण्ड्र रेखायें श्वेत वर्ण की तथा मध्य में शुक्ल वर्ण की (बेंदी) बिन्दु है। इसमें आसन नहीं है। यह तिलक नासिका के मूल से आरम्भ किया जाता है। ये सख्य-भाव के उपासक थे। श्री अयोध्या जी में राजमहल नामक स्थान इनकी तपोभूमि है।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १४

यह तिलक चतुर्भुजी सम्प्रदाय का है। इस तिलक में दोनों ऊर्ध्व पुण्ड्र रेखायें शुक्ल वर्ण की होती हैं। इसके बीच में श्री सीता जी का या जीव का प्रतीक अरुण वर्ण की श्री या बेंदी आदि नहीं दिये जाते, किन्तु नीचे आसन दिया जाता है। इसका प्रमुख स्थान अयोध्या जी में श्री हनुमान गढ़ी, भीमापट्टी है।

इस तिलक के विषय में प्रसिद्धि है कि एक बार महात्मागण प्रसाद पा रहे थे। बहुत बड़ा भण्डारा चल रहा था। जो महात्मा प्रसाद चला रहे थे, शीघ्रता में उनका कच्छ, कौपीन का पिछला भाग सरक गया। महात्मा जी के दोनों हाथों में प्रसाद लगे थे, कच्छ को संभाल नहीं सकते थे और

मुक्त कच्छ प्रसाद चला नहीं सकते थे। वे बड़े विवश थे। करुणामूर्ति प्रभु ने तत्काल दो और भुजाओं को देकर स्थिति संभाली। तब से ये महात्मा प्रभु की स्मृति में प्रभु के चरण प्रतीक केवल दो रेखायें आसन सहित धारण करने लगे। श्री अयोध्या जी में, माझा में मौनी बाबा का स्थान, वासुदेवघाट का स्थान आदि इनके प्रमुख केन्द्र हैं।[१]

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १५

यह श्री आञ्जनेय स्वामी श्री हनुमन्तलाल जी के आराधकों का तिलक है। यह तिलक स्वरूप एक विशेष निर्दशन स्वरूप है। वैष्णव या अन्य सभी सम्प्रदाय के आराधक अपने सम्प्रदाय के तिलक के साथ श्री आञ्जनेय हनुमान जी की महावीरी सिन्दूर प्रसाद को अपने मुख्य तिलक के निचले भाग में दक्षिण तरफ बिन्दु रूप में धारण करते हैं।

श्री रामानन्दीय वैष्णव तिलक - १६

यह तिलक श्री अयोध्या जी हनुमान् गढ़ी की भीमापट्टी से विशेष सम्बद्ध है। श्री अयोध्या जी के हनुमान् गढ़ी में जब भीमापट्टी की पारी आती है, तब वहाँ के सन्त, महन्त एवं अर्चक अपने मुख्य तिलक के साथ पूर्व निर्दिष्ट रूप में महावीरी सिन्दूर प्रसाद मुख्य तिलक के नीचे दक्षिणभाग में बिन्दुरूप से धारण करते हैं। यह इसलिए यहाँ दिखाया गया है कि मुख्य चतुर्भुजी सम्प्रदाय में मध्यभाग के रिक्त होने पर भी मुख्य तिलक स्वरूप में व्यवधान न आने पाये इसलिए दक्षिणपार्श्व में ही महावीरी धारण करते हैं।

---

१. उक्त विवरण डा० श्री सर्वेश्वरदास जी, स्मृति सदन स्वर्गद्वार, श्री अयोध्याजी की कृपा से प्राप्त। विस्तृत ज्ञान के लिए श्री भगवती प्रसाद सिंह जी के ग्रन्थ 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' पृ० ३३०-३४० देखें।

यह सर्वविदित है कि माता श्री सीता जी का श्री हनुमन्तलाल जी वात्सल्य भाव रहता है। राक्षसों के द्वारा श्री हनुमान् जी के शरीर चोट पहुँचाने के बाद माता जी उन्हें देखकर द्रवित हो गयीं, तब म जी ने अपने सबसे प्रिय सौभाग्य-सिन्दूर से उन घावों को भरा। सिन्दूर माता जी का प्रसाद था ही, उसमें पारा आदि के योग होने से आयुर्वे लाभ भी किया। वे व्रण साफ हो गये। श्री हनुमान् जी माता जी की मान कर तब से सर्वांग सिन्दूर लेपन करने लगे। माता जी के द्वारा प्र होने से सिंदूर श्री हनुमान् जी को बहुत प्रिय हुआ। इसलिए श्री हनु के प्रिय इस सिन्दूर को प्रसाद मानकर भक्तगण महावीरी धारण करते आज भी वाराणसी के संकट मोचन मन्दिर में श्री हनुमान् जी के शरी स्पृष्ट सिन्दूर लगा कर बालकों के अरिष्ट दोष, ग्रहदोष तथा पापयोनियों के द्वारा प्राप्त रोग दूर किये जाते हैं।[१]

----

१. श्री रामानन्द सम्प्रदाय के सभी तिलकस्वरूपों के लिए श्री भगवती प्रसाद सिं के ग्रन्थ 'रामभक्ति में०' पृष्ठ ३३० से ३३६ तक द्रष्टव्य।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक - १

इस तिलक के प्रवर्तक महाराज श्री स्वामिनारायण जी हैं। कुछ लोग कहते हैं, ये स्वामी जी श्री रामानुज के सिद्धान्त से प्रभावित थे, कुछ लोग कहते हैं कि ये स्वामी रामानन्द सम्प्रदाय से प्रभावित थे और कुछ कहते हैं कि इनका यह अपना अलग सिद्धान्त या सम्प्रदाय है। अयोध्या जी से उत्तर सरयू तट पर गोण्डा जिले के छपिया ग्राम में १७८१ ई० में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। इनकी तपोभूमि गुजरात है। वहाँ ये भगवान् के अवतार माने जाते हैं। वहाँ दो प्रमुख गद्दियाँ हैं। पहली प्रमुख गद्दी बड़ताल (गुजरात) में है, जहाँ वंशानुक्रम से महाराज प्रतिष्ठित होते हैं, जो गृहस्थ होते हैं। दूसरी अहमदाबाद में है, जहाँ इसी सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी, संन्यासी महाराज प्रतिष्ठित होते हैं। मूल स्थान बड़ताल है। आदिगुरु की परम्परा भी यहीं है।

इनके मुख्य उपास्य श्री लक्ष्मीनारायण जी हैं पर इनके यहाँ श्री-सीता-राम जी, राधा-कृष्ण जी आदि और देवों की भी उपासना बिना भेदभाव के बड़ी श्रद्धा से होती हैं और यही कारण है कि यहाँ पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय से मिलता हुआ तिलक समादृत है, जिसमें प्रभु के दोनों चरणों की प्रतीक दो ऊर्ध्व रेखायें और मध्य में श्री जी का प्रतीक बिन्दु है। ये तीनों अरुण वर्ण के होते हैं, जो कुंकुम से बनाये जाते हैं। अथवा तीनों पीत वर्ण के होते हैं, ज़ो क़ेशर या हरिद्रा से बनाये जाते हैं या तीनों शुभ्रवर्ण के होते हैं, जो मलयचन्दन से बनाये जाते हैं। इस तिलक में आसन देने की प्रथा नहीं है।[१]

----

१. श्री स्वामिनारायण मन्दिर मच्छोदरी, वाराणसी के अधिष्ठाता श्री हरिप्रसाद स्वामी जी के अनुग्रह से प्राप्त।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० १३ देखें।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक - २

श्री स्वामिनारायण सम्प्रदाय के तिलक में दोनों रेखायें तथा बिन्दु पीत वर्ण के होते हैं। ये रेखायें तथा बिन्दु केशर अथवा हरिद्रा के द्रव से बनाये जाते हैं।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक - ३

यह तिलक स्वरूप भी श्री स्वामिनारायण वै० तिलक संख्या १ और २ के समान ही है। केवल इसमें अरुण या पीत वर्ण नहीं है। प्रभुचरण प्रतीक दोनों ऊर्ध्व रेखायें तथा श्री जी का प्रतीक मध्य बिन्दु तीनों शुभ्रमलयचन्दन से निर्मित होते हैं।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक - ४

श्री स्वामिनारायण सम्प्रदाय से प्रभावित महात्मा विशेष का यह तिलक स्वरूप है। इसमें सब कुछ पूर्वोक्त स्वा० ना० वै० ति० सं० १, २ एवं ३ के समान ही हैं। केवल दोनों ऊर्ध्व रेखाओं के तथा मध्य बिन्दु के बीच में घनीभूत कुंकुम का लेप नहीं होता है। रेखाओं तथा बिन्दु के बीच का भाग खाली रखा जाता है।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक - ५

यह तिलक स्वरूप पूर्वोक्त तिलक स्वा० ना० वै० ति० संख्या ४ के समान ही है। केवल मध्य बिन्दु में कुंकुम लेप घनीभूत है। दोनों ऊर्ध्व रेखायें पूर्ववत् हैं।

श्री स्वामिनारायण वैष्णव तिलक - ६

शुभ्रमलयचन्दन निर्मित यह तिलक स्वरूप पूर्ववर्णित श्री स्वा० ना० वै० ति० सं० २ के समान है। अन्तर इतना ही है कि मध्य बिन्दु दोनों ऊर्ध्व रेखाओं के नीचे है तथा बिन्दु के मध्य में घनीभूत लेप नहीं है।

पुष्टिमार्गीय वैष्णव तिलक - १

(श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित)

अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में वैष्णवों के लिए कुंकुम से ऊर्ध्व तिलक धारण करने का विधान है। संभव हो तो भगवत् प्रसादी कुंकुम से तिलक धारण करना चाहिए। श्रीमद्भागवत् में भगवत् प्रसादी कुंकुम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

पूर्णाःपुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयितास्तनमण्डितेन।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम्[1] ॥

अर्थात् पुलिन्दियों ने भगवान् श्री कृष्ण के प्रसादी अर्थात् कुंकुम को धारण करके भगवद्भाव को अनायास ही प्राप्त कर लिया। बृहद्वामन-पुराण में भगवत् प्रसादी कुंकुम से तिलक धारण करने का विधान करते हुए कहा गया है—

भगवच्चरणांभोजकुंकुमस्य सुलेपनात्।
सर्वधर्मविहीनानां पुलिन्दीनां विना श्रमात्॥

श्रीकृष्णप्राप्तिरेवाभूज्जहुराधिं मनोभवाम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुंकुमेन सुगन्धिना॥

पुण्ड्राणि रचयेद् धीमान् ललाटादिषु वै क्रमात्।

भगवत् प्रसादी कुंकुम से तिलक धारण करने वालों को अनन्तफल की प्राप्ति होती है। इसलिए महाप्रभु आचार्य वल्लभ ने प्रसादी कुंकुम से

---

१. श्रीमद्भागवत १०, २१, १७

पुष्टिमार्गीर्य वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० १४ देखें।

तिलक का विधान किया है। भविष्य पुराण के अनुसार—

हरिद्रेनारुणेनैव कृष्णभुक्तेन पुण्ड्रकम्।
कृत्वा कर्मसु कुर्वीत तच्चानन्त्याय कल्पते॥

वल्लभ संप्रदाय में तिलक ऊर्ध्व (लम्बा) किया जाता है, ऊर्ध्व तिलक का विधान बृहत् मनुस्मृति में भी प्राप्त होता है।

उत्सवे वासुदेवस्य भुक्तशेषं तु कुंकुमम्।
अरुणं तेन वै कुर्याद् दण्डाकारोर्ध्वपुण्ड्रकम्॥

इस ऊर्ध्वपुण्ड्र की महिमा का वर्णन अन्य पुराणों में भी प्राप्त होता है—

अरुणं रजनीचूर्णं मत्पर्वादिषु मद्धृतम्।
तेनोर्ध्वपुण्ड्रं कुर्वन्ति तेषां वै नास्तिपातकम्॥

पुष्टिमार्ग में तिलक भगवान् श्री हरि के चरणारविन्द की भावना से धारण किया जाता है। इसलिए तिलक का स्वरूप (आकार) भगवान् के चरणारविन्द के जैसा होता है। जैसा कि पद्मपुराण में वर्णित है—

महाभागवतः शुद्धः पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम्।
दण्डाकारं तु वा देवि धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्॥

तिलक के मध्य में शून्य नहीं रखना चाहिये—

'ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा मध्ये शून्यं न कारयेद्' इस नियम के अनुसार कुंकुम से किये गये भगवत्पदाकृतिरूप पुष्टिमार्गीय तिलक के मध्य में गोपीचन्दन को भी धारण किया जाता है—

'ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु धारयेद् गोपिकामृदम्'।[१]

---

१. वामन पु०

स्वचरणाकृति की महिमा का वर्णन करते हुये भगवान् श्री कृष्ण ने कालिय नाग से कहा है—

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः।

यद्भयात् स सुपर्णस्त्वांनाद्यान्मत्पदलांञ्छितम्॥[१]

अर्थात् जिस गरुड़ के भय से तुम रमणक द्वीप को छोड़कर इस ह्रद में आये थे, वह गरुड़ अब तुमको मेरी चरणाकृति से चिह्नित होने के कारण नहीं खायेगा।

इस प्रकार के तिलक को देखकर निन्दा करने वालों को पुराणों में बौद्ध के समान निन्ध कहा गया है—

कौंकुमं चोर्ध्वपुण्ड्रं वै दृष्ट्वा निन्दां करोति यः।

बौद्ध एव स विज्ञेयः सद्धर्मनिरतोऽपि च॥

तिलक भगवान् की प्रसन्नता के लिए धारण किया जाता है। इसलिए दर्पण में देखकर तिलक धारण करना चाहिए। पुष्टिमार्ग में अनुरक्ति का द्योतक भगवत् प्रसादी कुंकुम से हरिचरणाकृति वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र किया जाता है।

कुछ आचार्यों के अनुसार भगवत्पादाकृति वाला ऊर्ध्वतिलक हरिमन्दिर की भावना से धारण किया जाता है। जैसा कि स्कन्द पुराण में कहा गया है।

सान्तराले प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम्।

मध्ये छिद्रेण संयुक्तं तच्छिद्रं हरिमन्दिरम्॥

----

१. श्रीमद्भा० पु० १०/१६/६३

पुष्टिमार्गीय वैष्णव तिलक - २

अखण्ड भूमण्डलाचार्य वैश्वानरावतार जगद्गुरु महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टि संप्रदाय को आपके द्वितीय पुत्र प्रभुचरण श्री विठ्ठल नाथ जी (गुसाई जी महाराज) ने और अधिक प्रसारित किया। प्रभुचरण श्री विठ्ठल नाथ जी ने पुष्टिमार्ग संवर्धन के लिए तत्तत् स्थानों पर सात पीठों (गृहों) की स्थापना करके अपने सातों पुत्रों को अलग-अलग पीठों का अधिपति बनाया।

वार्ता साहित्य के अनुसार परमदयालु श्री विठ्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र श्री १०८ गोकुल नाथ जी महाराज ने पुष्टिमार्ग की पूर्णरूप से रक्षा की। संवत् १६७२ में जहाँगीर द्वारा तुलसी की कंठी तथा ऊर्ध्वपुण्ड न धारण करने की राजाज्ञा प्रसारित की गयी,. जिसके फलस्वरूप गुजरात के पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को बहुत कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उस समय अमित तेजस्वी श्री गोकुल नाथ जी महाराज ने राजाज्ञा की परवाह न करते हुये पुष्टिमार्गीय हरिचरणाकृति वाले तिलक के कुछ भाग को कम करके धारण किया। चतुर्थ गृहानुयायी गो० श्री गोकुलनाथ जी पुष्टिमार्गीय वैष्णवों में दण्डाकार तिलक की परम्परा भी चल रही है। भगवत् प्रसादी कुंकुम से किये जाने वाले दण्डाकार तिलक के विषय में पद्मपुराण में लिखा है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं शोणं दण्डाकारं सुशोभनम्।
कौङ्कुमं यस्य भाले तु स वै भागवतोत्तमः॥

ब्रह्माण्ड पुराण में भी दण्डाकार तिलक की महिमा वर्णित है—

दण्डाकारमृजुं शोणं कृष्णभुक्तेन निर्मितम्।
गन्धेन प्रीयते कृष्णो यस्य भाले प्रदृश्यते।

दण्डाकार तिलक को धारण करने वाले अधिकतर गुज़रात प्रान्त के भरोच नामक स्थान में रहते थे। इसलिए इन वैष्णवों को भडुचिया भी कहा जाता है।[१]

----

१. श्री वल्लभशाह अग्रवाल के सौजन्य से वल्लभीय पीठाधीश गो० श्री १०८ श्याम मनोहरजी महाराज गोपाल मन्दिर, वाराणसी से प्राप्त।

स्मार्त तिलक - १

स्मार्त लोग पञ्चदेवोपासक होते हैं। सूर्य, गणेश, शिव, विष्णु, दुर्गा ये पञ्चदेव हैं। देवीभागवत के उत्तरार्द्ध में पञ्चदेवों के स्थान पर षड्देवों का भी वर्णन मिलता है—

संपूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम्।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥
संपूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने॥[१]

श्री रामानुज, श्री मध्व, श्री निम्बार्क, श्री वल्लभ और श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के वैष्णव अपने इष्टदेव से अतिरिक्त और देवों के प्रति तटस्थ होते हैं। श्री रामानन्दीय वैष्णव अपने इष्टदेव के अतिरिक्त और देवों के प्रति भी समादर भाव रखते हैं तथा अन्य देवों का भी पूजन करते हैं। कोई-कोई उनमें भी अनन्य भाव के उपासक पाये जाते हैं। गाणपत्य, सौर, शैव और शाक्त सम्प्रदाय के साधु, महात्मा एवं गृहस्थ अनन्य भाव के उपासक नहीं होते हैं। ये पञ्चदेवों अथवा षड्देवों के प्रति समान भाव रखते हैं। श्री शंकराचार्य जी के पीठों-रामेश्वर, बदरीनारायण, द्वारकाधीश तथा जगन्नाथ जी में क्रमशः कामाक्षी, ललिता, राजराजेश्वरी, गणेश तथा सूर्यनारायण सभी की समान भाव से स्थापना एवं अर्चना होती है।

इस प्रकार पञ्च या षड्देवों में समानभाव रखने वाले स्मार्त कहे जाते हैं। इनके तिलक में भी पञ्च या षड्देवों के प्रतीकों का समावेश रहता है। तिलक करते समय अंगूठे से पहले ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र

---

१. दे० भा० उत्त० स्क० ९/१२/६२-६३

स्मार्त तिलकाकृति के लिए चित्रावली पृ० सं० १५ देखें।

बनाकर फिर अनामिका एवं मध्यमा से पहले वाम ओर से फिर अंगूठे से दक्षिण से वाम की ओर रेखाओं को बनाया जाता है, जिससे तीन रेखायें बन जाती हैं। बीच का स्थान खाली रहना चाहिये। इसके बाद नीचे भौहों के ऊपर मध्य में कुंकुम, रक्तचन्दन, केशर युक्त चन्दन या सिन्दूर का बिन्दुरूप शाक्त तिलक लगाया जाता है। इस प्रकार ऊद्र्ध्वपुण्ड्र होने से विष्णु का, त्रिपुण्ड्र होने से शिव का तथा बिन्दु होने से शक्ति का समावेश माना जाता है। गणेश, सूर्य तथा वह्नि को श्री विष्णु में ही समाहित माना जाता है।

शाक्त तिलक - १ (क)

ज्ञानं समृद्धिः सम्पत्तिर्धर्मश्चैव बलं यशः।

तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा तदा ॥[१]

परमात्मा की अनेक शक्तियाँ हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में लिखा है कि ''परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते''। विष्णुपुराण में कहते हैं—

'शक्तयः सर्वभावानामचिन्तया ज्ञानगोचराः।

यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्वाद्या भावशक्तयः॥

परन्तु इनमें प्रधान तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं—

१. अन्तरंगा शक्ति (स्वरूप शक्ति, चित्शक्ति) २. तटस्था शक्ति (जीवशक्ति), ३. बहिरंगा शक्ति (मायाशक्ति)। प्रथम स्वरूप शक्ति एकधा होकर भी त्रिधा है—१. सन्धिनी २. संवित् ३. आह्लादिनी। विष्णुपुराण में इसके लिये लिखा है—

ह्लादिनी संधिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।

ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥[२]

परिपूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म नित्यतृप्त आत्मकाम होकर जीवों के प्रारब्धवश कल्याण हेतु इन शक्तियों के द्वारा जड़ चेतन जगत् पर अनुग्रह करते हैं। अतः इन शक्तियों की विविधरूपों में आराधना की जाती है। वैष्णवों में तो इनकी आराधना होती ही है, निर्गुण निराकर निर्विशेषाद्वैतवाद में भी पहली स्थिति के बोध में इनकी आराधना होती है। भगवान् श्री शंकराचार्य जी के द्वारा स्थापित मूल चारों पीठों में

---

१. दे० भा० उत्त० ९/२/११

२. वि० पु० १/१२/६८

शाक्त तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० १६, १७ एवं १८ देखें।

चार महाशक्तियों के चार पीठ हैं—शारदापीठ, कामाक्षीपीठ, विमलापीठ, तथा भद्रकालीपीठ। भगवान् श्री शंकराचार्य जी ने तो यहाँ तक कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥[१]

प्रत्यभिज्ञादर्शन के आचार्य श्री पुण्यानन्द कामकला विलास में कहते हैं—

न शिवेन विना देवी न देव्याश्च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिद् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥

श्री सोमानन्द जी के अनुसार—

शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवो जातु न वर्ण्यते[२]

भगवदनुग्रह पाने के लिए शक्ति की आराधना आवश्यक है। शक्ति सम्प्रदाय में पाँच शक्तियाँ मानी जाती हैं—चित्त, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया। इनके अतिरिक्त एक स्वातन्त्र्य रूपा आनन्दशक्ति भी है। अतः जो शक्ति की आराधना करते हैं, वे शाक्त कहे जाते हैं। शाक्त तिलक के लिए देवी भागवत के उत्तरार्द्ध में कहा है—

कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना।
समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥[३]

कस्तूरीबिन्दुभिर्युक्तं चन्दनेन समन्वितम्।
दीप्तं दीपप्रभाकारं सिन्दूरं बिन्दुशोभितम्॥

---

१. सौन्दर्यलहरी श्लो० १
२. शिव दृष्टि ३/२/३
३. दे० भा० उ० ९/२/२३

दधतो भालमध्ये च सीमन्ताधः स्थलोज्ज्वलम्।[१]

इस सन्दर्भ में ब्रह्मोक्तयाज्ञवक्यस्मृति में इस प्रकार कहा है—

अर्द्धचन्द्रं तथा शैवं शाक्तेयं तिर्यगुच्यते॥[२]

रत्नत्रय के अनुसार—

जायतेऽध्वा यतः शुद्धो वर्तते यत्र लीयते।

स बिन्दुः परनादाख्यो नादबिन्दुवर्णकारणम्॥[३]

महाकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित के आरम्भ में शाक्त तिलक के लिए कहा है—

'तरुणतमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलकबिन्दुना-

मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती।[४]

महामाहेश्वर अभिनवगुप्तपादाचार्य ने अपने तन्त्रसार ग्रन्थ में शक्ति के लिए बिन्दु शब्द का प्रयोग किया है। बिन्दु का स्थूल रूप वर्तुल होता है। अतः शक्ति का प्रतीक वर्तुल बिन्दु मान कर वर्तुलाकार तिलक बनाते हैं। शक्ति त्रिगुणात्मिका है। अतः तिलक में श्वेत, श्याम, तथा अरुण का समावेश किया जाता है। सुगन्धित तथा पवित्र द्रव्य केशर है अतः चन्दन में केशर मिलाकर पीत वर्ण का भी कर देते हैं। यहाँ दर्शाये गये वर्तुलाकार तिलक में ऊपर का भाग श्वेत चन्दन अथवा केशर मिश्रित चन्दन से बनाया गया है। मध्य का भाग कुंकुम अथवा सिन्दूर से, भीतर का बिन्दु कस्तूरी से निर्मित है। शीघ्रता में या आलस्यवश केवल अरुण वर्ण कुंकुम अथवा सिन्दूर से भी शाक्त तिलक वर्तुलाकार या अर्धचन्द्राकार बना लिया जाता है। शक्ति और शक्तियंत्र के विषय में

---

१. दे० भा० उ० ९/१३/२३-२४

२. ब्र० या० स्मृति प्रक० २ श्लो० ३२

३. रत्नत्रय का०-२२

४. हर्षचरित प्र० उ० पृ० १५

आनन्द लहरी, सौन्दर्यलहरी एवं इसकी व्याख्या, त्रिपुरतापिनी उपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद् ललितासहस्रनाम, तन्त्रराज, कामकला-विलास, महानिर्वाण तन्त्र, गौतमीय तन्त्र, कालीतन्त्र, तथा यामलग्रंथ आदि ग्रन्थों को देखना चाहिये।

शाक्त तिलक - १ (ख, ग, घ)

ये शाक्त तिलक पूर्वोक्त शाक्त तिलक संख्या एक के ही वैकल्पिक रूप हैं। जो लोग शीघ्रतावश या आलस्यवश संख्या एक के समान तिलक नहीं बना पाते वे लोग इस प्रकार से तिलक बनाते हैं।

शाक्त तिलक - २

यह इच्छा प्रधान शक्तितत्त्वात्मक अरुण वर्ण का केशर-कुंकुम निर्मित तिलक है, पर प्रायः यह त्रिकोण बिन्दु के भीतर अन्तर्निहित रहता है। यह शक्त्युन्मुख शाक्त सम्प्रदाय का तिलक है। परमात्मा की अनेक शक्तियां हैं, जिनका वर्णन शाक्त तिलक सं० १ में किया गया है। उनमें तीन विशेष महत्वपूर्ण हैं—ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति तथा क्रिया शक्ति। इनके लिए शांकरसम्प्रदाय में 'जानाति (ज्ञान) इच्छति (इच्छा) ततो यतते' (क्रिया)। अर्थात् पहले ज्ञान तब इच्छा इसके बाद क्रिया होती है। आगम एवं तन्त्र सम्प्रदाय विशेषतः त्रिकसम्प्रदाय में 'इच्छति जानाति ततो यतते' यह प्रक्रिया है। शांकर में पहले ज्ञान तब इच्छा और क्रिया होती है। शाक्त में शक्ति प्रधान होने से प्रथम ज्ञान नहीं किन्तु चिद्घन परमप्रभु परमात्मा परमभट्टारक में प्रथम लीला देखने की इच्छा, तब ज्ञान और क्रिया होती है। इसे त्रिगुणात्मक (सत्व, रज एवं तम गुणरूप) भी कहा जाता है। इसी प्रकार की प्रक्रिया को उन्मेष, निमेष तथा विमर्श भी कहा जाता है। इन तीनों के प्रतीक में तीन रेखायें दी जाती है। तीनों रेखायें परस्पर सापेक्ष हैं। अतः सम्मिलित होकर त्रिकोण

बन जाती है। इसी त्रिकोण के ऊद्ध्र्वमुख तथा अधोमुख के अनुलोम-प्रतिलोम होने से चतुर्दश भुवनात्मक आगम और तन्त्र शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ यन्त्र 'श्रीयन्त्र' बनता है। 'श्री यन्त्र' के बीच का बिन्दु श्री ललिता का सिंहासन है।

इनमें लीलामुख या संसारमुख होने से संसारोन्मुख इच्छा शक्ति को अधोमुख त्रिकोण मानते हैं और ज्ञानोन्मुख होने पर ऊर्ध्वमुख त्रिकोण मानते हैं। इसलिए आगम एवं तन्त्र में अधोमुख ∇ त्रिकोण और ऊर्ध्वमुख Δ त्रिकोण का बड़ा महत्व है। अधोमुख[१] त्रिकोण शक्तिप्रधान होने से 'भुक्तिं च मुक्तिं च ददाति नित्यम्'। शक्तितत्व मातृप्रधान होने के कारण गोप्य है इसीलिए आगम तन्त्र की प्राय: सारी प्रक्रियायें गोप्य होती हैं। अत: त्रिकोणात्मक तिलक स्पष्ट नहीं किया जाता है। शक्तिस्वरूप बिन्दुरूप में लक्षित किया जाता है। श्री अभिनवगुप्त ने तन्त्रसार में शक्ति को बिन्दुरूप में कहा है। वहाँ बिन्दु का तात्पर्य दूसरा है, पर लोक में बिन्दु वर्तुल रूप में व्यवहृत होने से शाक्ततिलक बिन्दु रूप है। त्रिक वाले कश्मीरी, महाकाली के उपासक बंगाली, नेपाल के अधित्यका, उपत्यका वाले, एवं उमा तथा चण्डिका के उपासक दाक्षिणात्य शाक्ततिलक 'बिन्दु' लगाते हैं।

शाक्त तिलक - ३

इसकी व्याख्या शाक्त तिलक संख्या १ के समान है। इस तिलक की एक बड़ी विशेषता है कि ऊर्ध्वमुख त्रिकोण होने से यह ज्ञानप्रधान शिवोन्मुख तिलक है।

----

१. समयाचार तथा कौलाचार दो शक्ति यन्त्र लिखा जाता है। समयाचार के अनुसार शक्ति के लिए ऊर्ध्वमुख त्रिकोण बनाया जाता है, इसको सृष्टिक्रम कहा जाता है। कौलाचार के अनुसार शक्ति तत्व के लिए अधोमुख त्रिकोण बनाया जाता है। इसको संहारक्रम कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में 'कुलं शक्ति:' कहा गया है।

शाक्त तिलक - ४

इस तिलक स्वरूप में दो त्रिकोण हैं—एक अधोमुख और दूसरा ऊर्ध्वमुख। यह शक्ति तथा शिव उभयात्मक तिलक है।

शाक्त तिलक - ५

यह अधोमुख त्रिकोण वाला, शक्ति प्रधान तिलक है। इस तिलकस्वरूप में शक्ति प्रधान त्रिकोण के अन्तर्गत बिन्दु का आकार बड़ा है।

शाक्त तिलक - ६

इस तिलक स्वरूप में ऊर्ध्व मुख शिवप्रधान त्रिकोण तथा मध्य में बड़ा बिन्दु है।

शाक्त तिलक - ७

यह तिलक स्वरूप सं० ६ के समान ही ऊर्ध्वत्रिकोण शिव (ज्ञान) प्रधान और शक्तिसमन्वित है पर इसमें एक गोलाकार बिन्दु के भीतर एक धनीभूत बिन्दु भी है।

शाक्त तिलक - ८

यह शाक्त तिलकस्वरूप है। इसका रहस्य गोप्य है। संभवतः कामरूप में (कामाख्या/कमच्छा) में इसका व्यवहार होता है। इसका रहस्य शाक्त गुरुजनों के मुख से सुनना-जानना चाहिये।

शाक्त तिलक - ९

यह भी शाक्त तिलक स्वरूप है। पर इसका भी रहस्य पूर्वतिलक सं० ८ के समान है। माता के विशेष आराध्य स्थानों या तीर्थों में सम्भवतः यह व्यवहृत है। इसका रहस्य शाक्त गुरुजनों के मुख से ही ज्ञेय है।

शाक्त तिलक - १०

यह भी शाक्त तिलक है। इसका भी रहस्य गोप्य है। शक्ति तीर्थों एवं आराध्य स्थानों में संभवतः इसका प्रचलन है। शाक्त गुरूओं के मुख से ही इस तिलक का भी रहस्य सुनना-जानना चाहिये।

शाक्त तिलक - ११

यह भी शाक्त तिलक है। इसका भी रहस्य पूर्वशाक्त तिलकों के समान ही गोप्य है तथा इसका रहस्य भी शाक्त गुरुओं के मुख से ही ज्ञेय है।

शाक्त तिलक - १२

यह भी शाक्त तिलक है। इसका रहस्य भी शाक्त गुरुजनों के मुख से ही जानना चाहिये। शाक्त जनों में संभवतः यह प्रचलित भी है।

शैवगुह्यशाक्त मिश्रित तिलक - १

यह शैव तथा शाक्त मिश्रित तिलक है। इसमें त्रिपुण्ड श्वेत वर्ण का तथा शेष रक्त वर्ण का होता है।

शैवगुह्यशाक्त तिलक - २

इस तिलक का रहस्य गुरुपदेश द्वारा गम्य है। इसमें त्रिपुण्ड्र श्वेत भस्म या चन्दन से शेष रेखायें कुंकुम से बनायी जाती हैं।

शैवगुह्यशाक्त तिलक - ३

इस तिलक का रहस्य भी गुरुमुख गम्य है। यहाँ भी त्रिपुण्ड्र भस्म से एवं मध्य की रेखायें कुंकुम से बनायी गयी हैं।

शैवगुह्यशाक्त तिलक - ४

इसका रहस्य भी गुरूमुख से ही गम्य है। इसमें त्रिपुण्ड्र भस्म से तथा भीतर का नेत्राकार तिलक कुंकुम से निर्मित होता है।

शैवगुह्यशाक्त तिलक - ५

इस तिलक का रहस्य भी गुरुपदेश से गम्य है। इस तिलक में सम्पूर्ण रेखायें रक्त वर्ण से बनायीं जाती हैं।

शैवगुह्यशाक्त तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० ११ देखें।

श्री कबीर सम्प्रदाय का तिलक

इस तिलक के प्रवर्तक श्री कबीर साहब हैं। श्री कबीर साहब स्वामी श्री रामानन्दजी के शिष्य थे पर गुरू के समान सगुण श्री राम इनके उपास्य नहीं थे। इनके उपास्य व्यापक ब्रह्म श्री राम थे और ये निर्गुण, रामभक्ति धारा के संत थे। इनके सिद्धान्त ब्रह्माद्वैत, विशिष्टाद्वैत या द्वैत इन सब से भिन्न था। ये श्री राम को मानते थे पर इनके राम अयोध्या के श्री राम नहीं है, इनके श्री राम निर्गुण निराकर ब्रह्म रूप हैं और सर्वव्यापक हैं तथा प्रेमास्पद हैं। अतः इनके तिलक में ब्रह्म जीव एवं माया आदि के सूचक अथवा अवतारी श्री विष्णु, श्री राम एवं श्री कृष्ण आदि के चरणों की प्रतीक रेखायें या श्री जी के प्रतीक में बिन्दु आदि की रेखायें नहीं रखी जातीं। इसी प्रकार श्री राम जी आदि के चरणरज की भावना से रामरज या गोपी चन्दन आदि का उपयोग भी नहीं होता। इनका राम सर्वत्र है, व्यापक है, एक है और चिद्घन है। अतः मलयगिरि चन्दन द्रव को नासिका के अग्रभाग से आरंभ करके मस्तक पर्यन्त धनीभूत एकाकार मध्य में छिद्र के बिना लेपन किया जाता है। नासिका के अग्रभाग से ह्स्वरूप से आरंभ होकर ऊपर की ओर क्रमशः स्थूल होता जाता है।

श्री कबीर सम्प्रदाय की तिलकाकृति के लिए चित्रावली पृ० सं० २० देखें।

मिश्रित वैष्णव तिलक - १

कुछ ऐसे लोग हैं, जो परम्परया वैष्णव तो हैं पर ढंग से जिनको शिक्षा नहीं प्राप्त हुई हैं, उन्होंने अपनी कुल परम्परा के अनुसार वाल्लभ दो ऊर्ध्वपुण्ड्र रेखायें अंकित कीं और आसन नहीं दिया साथ ही अपने रामानुजीय मित्र के प्रभाव से या देखादेखी बीच में भी ऊर्ध्व रेखा बना दी। ये ऊर्ध्व रेखायें श्वेत वर्ण या पीत वर्ण की होती हैं।

मिश्रित वैष्णव तिलक - २

यह तिलक, मिश्रित वैष्णव तिलक संख्या एक के ही समान है। अन्तर यही है कि मध्य की कुंकुम, केशर मिश्रित अरुण वर्ण की श्री जी की रेखा के मध्य में रक्तवर्ण की एक वर्तुलाकार बिन्दी भी दी जाती है। इस बिन्दी का मध्य भाग खाली रहता है अर्थात् भरा नहीं जाता है। ऊर्ध्व रेखायें श्वेत या पीत वर्ण की होती हैं। तथा मध्य का बिन्दु कुंकुम अथवा रक्तचन्दन से बनाया जाता है।

मिश्रित वैष्णव तिलक - ३

यह तिलक स्वरूप, मिश्रित वैष्णव तिलक संख्या २ के ही समान है। इसमें अपने किसी आदरणीय महानुभाव या अपने घनिष्ठ मित्र के प्रभाव से तीनों ऊर्ध्व रेखाओं के बाद आसन के स्थान पर श्री जी के चिह्न-स्वरूप धनीभूत बिन्दी दे दी गयी है। इस तिलक की ऊर्ध्व रेखायें श्वेत या पीत वर्ण की होती हैं तथा बिन्दी रक्तवर्ण की होती है।

मिश्रित वैष्णव तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० २१ देखें।

मिश्रित वैष्णव तिलक - ४

यह तिलक स्वरूप पूर्ववर्णित तिलक संख्या ३ के समान है किन्तु ऊर्ध्व रेखायें कुछ पतली बनाते हैं तथा श्रीबोधक नीचे की बिन्दु में घनीभूत कुंकुम न होकर बिन्दु का मध्य भाग शुक्ल रहता है।

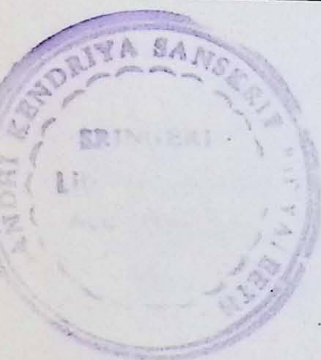
मिश्रित वैष्णव तिलक - ५

इस तिलक में श्री वाल्लभ तथा श्री रामानुज जी या श्री रामानन्द जी के तिलक का प्रभाव है। दोनों के तिलकों के रूप का मिश्रण कर दिया गया है। इसमें दोनों ऊर्ध्व रेखायें श्वेत वर्ण की तथा बिन्दी अरुण वर्ण की होती है।

सम्प्रदाय रहित वैष्णव तिलक - १

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो शैव, वैष्णव या शाक्त सम्प्रदाय के होते हैं। उनके पूर्वज इन सम्प्रदायों में दीक्षित होते हैं पर शिक्षा-दीक्षा की कमी से या आधुनिक विचार के होने से या ऑफिस में कार्यरत होने से लज्जावश शुद्ध रूप में अपना तिलक नहीं बना पाते। वैष्णव परम्परा के कारण वे एक ही ऊर्ध्व पुण्ड्र बनाकर संतोष कर लेते हैं। इस एक ऊर्ध्वपुण्ड्र का कोई भी वर्ण रक्त, पीत या श्वेत हो सकता है।

सम्प्रदाय रहित वैष्णव तिलकाकृति के लिए चित्रावली पृ० सं० २२ देखें।



अनिर्णीत तिलक

अन्त में कुछ ऐसे तिलकस्वरूपों को अंकित किया जा रहा है, जिनके विषय में अब तक पर्याप्त जानकारी नहीं मिल सकी है कि ये किन सम्प्रदायों से संबद्ध हैं तथा देश के किस भाग में इनका प्रचलन है। ऐसी तिलकाकृतियों की संख्या ८ है।

अनिर्णीत तिलक – ६

संभवतः यह तिलक वैरागी सम्प्रदाय का है। वैरागी सम्प्रदाय के कुछ साधु पूरे ललाट पर भगवान् के चरणों के प्रतीक के रूप में गोपी चन्दन अथवा श्वेत मलय चन्दन से घनीभूत चौड़ा लेप लगाते हैं तथा मध्य में दीप शिखा की भाँति कुमकुम का तिलक लगाते हैं।[१]

----

१. उक्त विवरण पं० श्री रामनारायणचार्य जी प्रवाचाक, गंगानाथ झा के० सं० विद्यापीठ से प्राप्त।

श्री सभी अनिर्णीत तिलकाकृतियों के लिए चित्रावली पृ० सं० २३ एवं २४ देखें।

सम्प्रदाय तथा पन्थ

अध्यात्म के क्षेत्र में दार्शनिक रीति तथा तर्क-विर्तक के द्वारा जो सिद्धान्त सुस्थिर किया जाता है और उस सिद्धान्त का जहाँ पालन किया जाता है, वह एक सम्प्रदाय कहलाता है। शक्तिसंगमतन्त्र में तथा आचार्य श्री शंकराचार्य आदि के यहाँ तो सम्प्रदाय का एक दूसरा भी अर्थ है। इस प्रकार के अर्थों की मान्यता के अनुसार तथा गाणपत्य, सौर, शैव, वैष्णव एवं शाक्त सम्प्रदायों के अनुसार तिलक पर विवेचन किया जा चुका है। अब कुछ ऐसे भी धार्मिक आध्यात्मिक समुदाय हैं, जिन्हें सम्प्रदाय न कहकर पन्थ कहा जाता है। पन्थ के लिए यह कहा जा सकता है कि आचार्य के द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के भीतर रह कर कुछ विशेष तथ्यों पर नवीन प्रकार की व्याख्या करके ज्ञान उपासना या आराधना का एक नया लघुमार्ग बनाना पन्थ है। सम्भवतः 'पद्धति' शब्द का समानार्थक 'पन्थ' शब्द हो सकता है। इसीलिए श्री कबीर साहब के अनुयायियों को कबीरपन्थी कहा जाने लगा। श्री कबीरदास जी स्वामी श्री रामानन्द जी के शिष्य थे तथा रामानन्द सम्प्रदाय के थे, पर निगुर्णराम, व्यापकराम तथा ज्ञानाश्रयी भक्ति के आधार पर जो एक अपनी मान्यता चलायी, उसे श्री कबीर साहब के नाम से जोड़कर कबीर पन्थ कहा जाने लगा। इस प्रकार के अनेक पन्थ हैं। देश में इनकी व्यापकता है। संतसाहित्य के इतिहास के बहुत बड़े विद्वान श्री परसुराम चतुर्वेदी जी ने अपने ग्रन्थ 'उत्तर भारत की संत परम्परा' (तृतीय संस्करण, १९७२ ई०, पृष्ठ ४६७-४६८) में सम्प्रदाय, पंथ एवं वाद की व्याख्या की है तथा इनकी सूची भी दी है। उनको यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। इन पंथ वालों के तिलक पर पंथ प्रवर्तक एवं पंथ प्रवर्तक के सम्प्रदाय के अनुसार तिलक की व्याख्या समझनी चाहिये। जैसे डा० श्री वंशीधर त्रिपाठी जी ने अपने ग्रन्थ 'साधुज् आफ इण्डिया' में लिखा है कि पारसरामी पंथ वालों ने निम्बार्क तिलक को अपनाया है किन्तु बीच का बिन्दु छोड़ दिया है। इसी प्रकार

औरों में भी समता एवं विषमता है। इन सभी पंथों में कुछ को छोड़कर सभी के यहाँ संभवतः तिलक की कोई विशेष मान्यता परिलक्षित नहीं होती। मान्यता होगी भी तो प्रकाश में अधिकतर नहीं आयी है। उपर्युक्त ग्रन्थ 'उत्तर भारत०' की शब्दावली एवं सूची इस प्रकार है—

पंथ व सम्प्रदाय शब्दों का प्रयोग ठीक एक ही ढंग से होता है। जिस धार्मिक वर्ग ने अपनी संज्ञा अपने मूल प्रवर्तक के नाम से ग्रहण की है, उसे साधारणतः उसके द्वारा चलाया गया पंथ अर्थात् प्रदर्शित मार्ग कहा जाता है। जैसे कबीर पंथ, नानक पंथ, दादरी पंथ, बाबरी, पंथ, मलूक पंथ, दरिया पंथ और पानम पंथ आदि। परन्तु जिस ऐसे वर्ग का नामकरण, उसके अनुयायियों के किसी विशिष्ट नाम या विशेषता के आधार पर हुआ है, वह बहुधा सम्प्रदाय कहा गया मिलता है। जैसे साधु सम्प्रदाय, सतनामी सम्प्रदाय, निरञ्जनी सम्प्रदाय, रामस्नेही सम्प्रदाय, शिवनारायणी सम्प्रदाय तथा नामी सम्प्रदाय आदि। इस सम्प्रदाय शब्द का प्रयोग कभी-कभी वर्ग विशेष के इष्ट देव अथवा उसके किसी कल्पित मूल प्रवर्तक के नामानुसार भी हुआ करता है। जैसे परब्रह्म सम्प्रदाय अथवा वैष्णव भक्तों के श्री सम्प्रदाय, रूद्र, सम्प्रदाय आदि। फिर भी राधा स्वामी के अनुयायी अपने सम्बन्ध में सम्प्रदाय की जगह प्रायः सत्संग का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझते हैं। यही बात हम देवी साहब द्वारा प्रवर्तित संतमत सत्संग के अनुयायियों में भी पाते हैं। इसके सिवाय जहाँ पर पन्थ तथा सम्प्रदाय इन दोनों में से किसी एक का व्यवहार किया जाना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता वहाँ पर केवल परम्परा शब्द का प्रयोग कर देना मात्र भी कदाचित् अनुचित नहीं हो सकता। जैसे संत सिंगा की परम्परा तथा हरिदासी परम्परा आदि।[1]

----

१. श्री परसुराम चतुर्वेदी-'उत्तर भारत की संतपरम्परा' अध्याय ५ पृ० ४६७-४६८ (तृतीय संस्करण १९७२ ई०)

सम्प्रदाय

१. अघोर
२. अनामी
३. अलतिया
४. अडवार
५. आनन्द
६. उदासी
७. अलमस्त
८. गोविन्दसाहब
९. दीवानेसाहब
१०. फूलसाहिब
११. बाबाहसन
१२. उदासीन
१३. कालचक्रयान
१४. खालसा
१५. तत्त
१६. बंदई
१७. सत्य
१८. गुरु
१९. गुलाबदासी
२०. गौडीय
२१. चरणदासी
२२. चैतन्य
२३. टेककड़ाई
२४. दत्त
२५. दत्तात्रेय
२६. प्रधान
२७. दरियादासी
२८. दामोदरजी
२९. दिगम्बर
३०. धरनीश्वरी
३१. नाँगी
३२. नाथयोगी
३३. नायनमार
३४. नानकशाही
३५. वा नागा
३६. नामधारी
३७. निरंजनी
३८. निर्मला
३९. परब्रह्म
४०. पाशुपत
४१. प्रकाश
४२. प्रत्यभिज्ञाविशिष्ट
४३. प्रणामी/प्राणनाथी
४४. वाउल
४५. बाबानामदेव
४६. बाबालाली
४७. ब्रह्मा
४८. अगतपंथी
४९. मन्त्रयान
५०. महायान
५१. माध्व
५२. योगी
५३. सलिमाण
५४. रसायन
५५. राधावल्लभी
५६. रामसनेही
५७. रामानन्दी
५८. रामायत
५९. रैदासी
६०. लिंगायत
६१. वज्रयान
६२. वल्लभ
६३. वाउकडाई
६४. वारकरी
६५. विश्नोई
६६. विष्णुस्वामी
६७. वैष्णव

समुदाय

६८. पंच सखा
६९. सहजिया
७०. शत्तारी
७१. कादरी
७२. शिवनारायणी
७३. शून्यवादी
७४. शैव
७५. शैव कर्णाटकी (वीर)
७६. शैव कश्मीरी
७७. कालामुख / कापालिक
७८. श्वेताम्बर
७९. सत्तनामी
८०. सहजयान
८१. सहजिया बौद्ध
८२. साइदाता
८३. साध
८४. सिक्ख
८५. सिद्ध
८६. सुथरा शाही
८७. सुन्नी
८८. सूफी
८९. सौर
९०. स्मार्त
९१. हरिदास
९२. हीनयान
९३. गांधी वाद
९४. विहंगम मार्ग

पंथ

९५. अघोरपंथ
९६. अलखसारी
९७. अवधूत
९८. आईपंथ
९९. आवापंथ
१००. कथंडनाथपंथ
१०१. कबीरपंथ
१०२. करडापंथ
१०३. गंगानाथपंथ
१०४. गरीबपंथ
१०५. गोरखपंथ
१०६. टकसारीपंथ
१०७. दरियापंथ
१०८. दत्तपंथ
१०९. दादूपंथ
११०. नाथपंथ
१११. नानकपंथ
११२. पलटूपंथ
११३. पानपपंथ
११४. भीखापंथ
११५. मीनानाथी पंथ
११६. लालपंथ
११७. साईपंथ
११८. साधपंथ
११९. साहिबपंथ
१२०. सेनपंथ

वैदिक सम्प्रदायों के अतिरिक्त भारतीय दूसरी परम्पराओं में भी चन्दन एवं तिलक की मान्यता है। जैसे बौद्ध सम्प्रदाय पूर्वज्ञानाश्रयी सम्प्रदाय है, पर इनमें भी महायान शाखा के महात्माओं में चन्दन का व्यवहार होता है। भगवान् बुद्ध देव के पूजन में पालि भाषा के द्वारा 'चन्दनं समर्पयामि' ऐसा कहकर सारनाथ वाराणसी के बौद्धमठों में चन्दन द्वारा पूजा होती है। पर ये साधक महात्मा अपने ललाट पर तिलक जैसा कोई चिह्न नहीं बनाते। जैन परम्परा में दोनों प्रकार के विद्वान् श्रावक एवं महात्मा मिलते हैं, जो तिलक लगाते भी हैं और नहीं भी लगाते। इनमें तिलक की कोई विशेष आकृति नहीं होती। केशरयुक्त या केशर के बिना भी मलयगिरि चन्दन का एक बिन्दु ललाट पर लगाते हैं। कोई-कोई अरुणवर्ण का कुंकुम बिन्दु भी धारण करते हैं। वैसे इस सम्प्रदाय की आराध्या श्री पद्मावती देवी जी के पूजन एवं शृंगार में तथा महापुरुषों के पूजन में चन्दन तथा कुंकुम का प्रयोग होता है।

इस प्रकार विविध ग्रन्थों के आलोकन, मन्थन और चिन्तन के उपरान्त लिखा गया यह ग्रन्थ, तत्तत् सम्प्रदायों, पंथों एवं समुदायों से जुड़े भक्त जनों की जिज्ञासाओं की पूर्ति तथा भ्रान्तियों के निराकरण में सहायक एवं उपादेय हो सकेगा, ऐसी मेरी मति है।

शम्

गृहीत ग्रन्थ सूची

1. हर्ष चरित
2. भामती
3. पद्मपुराण
4. स्कन्द पुराण
5. वाचस्पत्यम्
6. शिवपुराण
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण
8. भविष्योत्तर पुराण
9. ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्य स्मृति
10. देवी भागवत पुराण
11. प्रयोग पारिजात
12. व्याघ्रपाद स्मृति
13. वशिष्ठ स्मृति
14. गणेश पुराण
15. भविष्य पुराण
16. लिंग पुराण
17. श्रीमद् भागवत पुराण
18. वामन पुराण
19. विष्णु पुराण
20. सौन्दर्य लहरी
21. शिव दृष्टि
22. रत्नत्रय
23. वीर मित्रोदय
24. उत्तर भारत की संत परम्परा
25. वैष्णव धर्म का इतिहास
26. यजुर्वेद
27. साधुज ऑफ इण्डिया
28. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय
29. इन्क्रेडिबुल इण्डिया
30. सूत्र संहिता (नागोजी भट्ट)

